

JULY TO SEPTEMBER 2009
YEAR 6TH : ISSUE 3rd



जुलाई से सितम्बर 2009
वर्ष छः : अंक तृतीय

GYAN PRABHA
(Quarterly)

**ज्ञान
प्रभा**
(त्रैमासिक) 14

प्रबन्ध सम्पादक
सुरेश चन्द्र

Managing Editor
Suresh Chandra

मूल्य : 30/- रुपये

वार्षिक मूल्य 100/- रुपये

भारत विकास परिषद् प्रकाशन

इस अंक में.....

अपनी बात		4
Editors Reflections		6
तत्त्व ज्ञान		8
भारत विकास परिषद्-सिद्धान्त एवं कृतित्व	□ डॉ. अजित गुप्ता	9
प्रशासनिक सुधार का मंत्र	□ जगमोहन	14
प्रशासन एवं आई.ए.एस.	□ सूर्या थिंक टैंक	17
भारतीय प्रशासनिक परम्परा	□ मुकुन्द बिहारी	21
A Brother Officer's Advice	□ Gyanendra Badgaiyan	29
Enters the New Babu	□ Vijay Jung Thapa	30
Mere Administrative Refroms Are Not Suffcient	□ O.P. Saxena	34
Role of Administrastion for Resurgent India	□ Somdatta Mohan	37
Dharma-Its Importance in Governance	□ Justice K.P. RadhaKrishra Menon	39
रैगिंग का भयावह चेहरा पश्चिमी सभ्यता का नायाब तोहफा	□ आर.के. श्रीवास्तव	42

हिन्दी का प्रचार-प्रसार: विश्व संदर्भ	□ दया प्रकाश सिन्हा	47
प्राचीन भारत-अद्भुत भारत	□ सुरेश चंद्र	54
यज्ञ का पर्यावरण पर प्रभाव	□ डॉ. सुरेन्द्र नाथ सेमल्टी	58
आजाद भारत: कैद नदियां	□ राजेन्द्र सिंह	61
पानी-पानी	□ मधुसूदन आनन्द	63
महिला आरक्षण से ज्यादा		
ज़रूरी है ग्रामीण आरक्षण	□ प्रो. ओम प्रकाश सिंह	65
सफलता एवं समृद्धि से संतुष्टि तक का सफ़र	□ समीक्षक	68
I Believe	□ Dr. Karan Singh	70
Doctor's Arrogance	□ Indra Chandra	73
Social Responsibility of the Super-Rich	□ Dr. A. Jagan Mohan Reddy	75
Ancient Wisdom and Modern Thought	□ Dr. N.C. Ramanujachary	78
The India of My Dreams	□ K.R. Ramachandran	81
Somnatha in Legend and History	□ A. N. Khanna	85
Letters to Editor	-----	88

अ प नी बा त

पत्रिकाओं की उपयोगिता-पुस्तकों की उपयोगिता पर बहुत कुछ लिखा गया है। पुस्तकें ज्ञान का भंडार होती हैं, सबसे अच्छी मित्र हैं एवं कभी भी अकेलेपन का अहसास नहीं होने देतीं। इनके द्वारा दिया ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होता है। किसी युग में केवल श्रुति एवं स्मृति ही थी अर्थात् गुरु मौखिक रूप से ज्ञान प्रदान करता था, शिष्य उसे सुनता था एवं स्मृति में संजो लेता था। किन्तु इस ज्ञान को लिखने की आवश्यकता महसूस हुई तब पुस्तकें ताड़ पत्रों से होती हुई कागज पर उतरीं एवं अब इंटरनेट में समा गई हैं।

किन्तु पत्रिकाओं पर लेख कम लिखे गये हैं एवं उन्हें पुस्तकें से निम्न श्रेणी की वस्तु समझा जाता है। केवल पत्रिकाएं पढ़ कर कोई भी विद्वान नहीं बन सकता। किसी भी विषय का गहन अध्ययन करने के लिये पुस्तकें पढ़नी ही पड़ती हैं।

किन्तु पत्रिकाओं का महत्व भी कुछ कम नहीं है। पुस्तकें प्रायः ही पुस्तकालय में पड़ी रह जाती हैं किन्तु पत्रिकाएं उन्हें उन बंद कमरों से खींच कर बाहर लाती हैं। पुस्तकें पुरानी हो जाती हैं। पत्रिकाएं सदैव नया रूप धारण करके नई साज-सज्जा में बुक स्टालों से पुकारती रहती हैं। एक विषय की एक पुस्तक 200-250 रुपये में एक विषय का ज्ञान कराती है जबकि 25 रुपये की पत्रिका, कहानी, कविता गम्भीर लेख, हास्य व्यंग्य सबका स्वाद दे जाती है। साहित्यिक आन्दोलन, वाद-विवाद, नित नये बदलते विचार, नये आविष्कार इन सबको आपके हाथों तक पहुँचाने में पत्रिकाएं ही समर्थ हैं।

ज्ञान प्रभा इस सबमें कहाँ तक सफल हो रही है यह निर्णय हम पाठकों पर ही छोड़ते हैं।

भ्रष्टाचार एवं नौकरशाही-ट्रांसपेरेंसी इन्टरनेशनल द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत संसार के उन दस देशों में से एक है जिनकी नौकरशाही सर्वाधिक भ्रष्ट एवं अकर्मण्य है। इस

बात से हमें कुछ संतोष हो सकता है कि चीन, पाकिस्तान एवं बांग्लादेश भी इन दस देशों में शामिल हैं। हमारे देश में सरकारी कर्मचारियों की कुल संख्या 2 करोड़ के लगभग है जिनमें केन्द्र सरकार, राज्य सरकारें एवं अर्ध सरकारी प्रतिष्ठान जैसे बैंक इत्यादि शामिल हैं। यह संख्या इस देश की विशाल जनसंख्या को दृष्टि में रखते हुए कुछ अधिक नहीं है। कुछ देशों जैसे जापान, स्वीडन इत्यादि में सरकारी कर्मचारियों का प्रतिशत हमारे देश से भी अधिक है। किन्तु अन्तर यह है कि हमारे देश के कर्मचारियों की यह फौज केवल काम ही नहीं करती अपितु उसमें रोड़े भी अटकाती है।

राज्य अमूर्त है किन्तु प्रशासन यथार्थ (Tangible) है। शासन राज्य की भुजाएं हैं और उसकी पहचान है। मिश्र, चीन, रोम एवं प्राचीन भारत को भी उनके दृढ़ प्रशासन ने ही सफल एवं स्मरणीय बनाया था। महाभारत के अनुसार गड़रिये के बिना जैसे पशुओं की स्थिति होती है वैसे ही राजा के बिना प्रजा में त्राहि-त्राहि मच गयी थी। इसलिये धर्म पालन, सज्जनों की रक्षा एवं दुष्टों के दमन हेतु राजा का प्रादुर्भाव हुआ। भारतीय परम्परा राजा को ईश्वर अंश मानती है—“ईश्वरांशो हि राजाः”

ज्ञान प्रभा का यह अंक ‘प्रशासनिक सुधार’ को समर्पित है। आई.ए.एस. प्रशासन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक अंग माना गया है। ये ही अधिकारी हैं जो नीतियां बनाते हैं एवं उन्हें कार्यान्वित करते हैं। आई.ए.एस. को भारतीय प्रशासन का ‘स्टील फ्रेम’ कहा जाता था। किन्तु पिछले 62 वर्षों में इस स्टील फ्रेम में अनेक बदलाव आये हैं। इन सबका विवरण आगे दिये गये लेखों में मिलेगा।

यह भी एक विडम्बना है कि प्रशासनिक सुधार आई.ए.एस. तक ही सीमित कर दिये गये हैं जब कि आम आदमी को नित्य प्रति पटवारी, तहसीलदार एवं अन्य कनिष्ठ अधिकारियों से जूझना पड़ता है। आवश्यकता इस संपूर्ण वर्ग एवं व्यवस्था में सुधार की है।

प्रशासन की उत्कृष्ट एवं सर्वथा निर्दोष व्यवस्था की खोज एक लम्बी प्रक्रिया है। प्रशिक्षण स्तर पर इस पूरे अम्ले को कैसे दक्ष एवं संवेदनशील बनाया जाये? समय-समय पर इन सबका प्रभावी एवं निष्पक्ष मूल्यांकन कैसे किया जाये ताकि भ्रष्टता एवं अकर्मण्यता की स्थिति में उन्हें तुरंत अपदस्थ किया जा सके, वे E. Governarce, I.T. इत्यादि में भी दक्ष हों। इन समस्त प्रश्नों के उत्तर आवश्यक है।

संभवतः यह एक अंतहीन खोज है जिसमें ज्ञान प्रभा का यह अंक किंचित योगदान दे सकेगा।

५

Editor's Reflections-

SEWA THROUGH JOB AND PROFESSION

Generally we divide our activities in two water tight compartments- The one is our job or profession and the other is Sewa or voluntary work and sometimes our religious life as well. Mostly there is no connection between the two, a voluntary worker doing Sewa helps others, behaves gently and gives donations. The same person becomes a changed man when he is in his profession or job. He may not perform his duties properly, fleece and cheat others and may behave rudely. A person may worship gods in a temple in the morning and chant mantras. But he may have no compunction in telling lies, sell spurious goods and accept graft when on his job.

The reason for behaving in such a manner is that we perform functions of three categories: The first is working for one self, for one's livelihood and for one's family. The other type of activity is working for others, for the society and for the country. This may be called Sewa. A third category is working for attaining God or you may call it spiritual part of activities. When we work ourselves, we become totally selfish and don't care how our actions will effect others. A doctor charges excessive fees, prescribes unnecessary medical tests to earn commission and gives irrational and costly medicines to get gifts from pharmaceutical companies.

Our activities had no name 1000 years ago and these were called jobs, a cooking job, a building job etc. To these jobs some skill and knowledge were added and these became occupations or vocations. When occupation becomes popular and attractive, it becomes a career. Then professions came into existence. The definition of a profession is: a body of knowledge which can be categorized, classified, measured, imparted and acquired. There are professions like law, medicine, engineering etc. When we do some job, adopt a profession and pursue a career, we do something for others and take something from others.

People pursuing a career take 75% for themselves and give 25% to others. In the case of professionals it is fifty-fifty. Service is an activity for earning livelihood is 75% for you and 25% for me. And the last comes mission, 100 for you and zero for me. Thus we transit from a job, vocation, an occupation, a career, a profession to a service and a mission.

But all of us can't be missionaries. Of course, we can try to assimilate the spirit of sewa or mission into our career, profession, job or occupation. We can make all our work sanctified, profound, sublime, to make it service to the society and and to the whole humanity. We must evolve a balance between service to the self and service to others. We must always keep in view that our actions don't harm the interest of others. It is possible to earn our livelihood while providing sewa to others. If we follow some principles a work, profession and job can become a sewa:

- 1 Greet the customer with a smile and treat him with respect irrespective of his race, religion, education, economic or social status.
- 1 Our communication should be gentle and compassionate. We should listen to the client or customer fully and attentively.
- 1 We must have full knowledge about our work or product and should give it to the customer in a most simple way. We should refrain from lying and misguiding the person.
- 1 We should refer the person to the appropriate specialist our shop or store if we think that what we are offering may not meet the needs of the client or customer.
- 1 Though charging fees or selling goods, we should try to give the maximum benefit to the person through that service or product.
- 1 Our action as product or service provider should be guided by the fact that how it will impact ours and client's physical, emotional and intellectual well-being and how it will impact family, community and earth in general.

The word 'management' is very much in vogue these days. **Tao said 'selfishness is achieved through selflessness'**. So, the great art of management lies in managing selfishness along with selflessness, doing sewa while doing business and earning livelihood while doing good to others. There is no contradiction between the two and both are compatible.

ॐ

HOLY WISDOM

तत्त्व ज्ञान

न हि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन।
अवैरेण च शाम्यन्ति एष धर्मः सनातनः॥

Never do enmities cease by hating in this world, but
hatred ceases by love. This is the eternal law.

इस संसार में घृणा करने से शत्रुता का अन्त नहीं होता। प्रेम घृणा पर
विजय प्राप्त करता है। यही अटल नियम हैं।

मेरा देश

जहाँ अभय मन ललाट उन्नत, मुक्त ज्ञान का द्वार जहाँ
खंड-खंड जग को न करे संकीर्ण गृह-दीवार जहाँ,
जहाँ सत्य की गहराई से शब्द-शब्द बाहर आये
जहाँ पूर्णता और साधना अथक बांह निज फैलाये,
खो न चुकी हो जहाँ पंथ निज स्वच्छ बुद्धि-धारा निर्मल,
मृत परम्परा-शुष्क-मरुस्थल रेत बीच अवरुद्ध विकल,
चिर विकासमय भाव-कर्म में मन प्रवृत्त तू करे जहाँ,
उस स्वतंत्रता-स्वर्ग में, पिता, जागे मेरा देश वहाँ।

-रवीन्द्र नाथ टैगोर

भारत विकास परिषद्-सिद्धान्त एवं कृतित्व

व डॉ. अजित गुप्ता

भारतीय संस्कृति का संवर्द्धन करना ही भारत विकास परिषद् का एकमात्र सिद्धान्त है। संस्कृति का अर्थ है-प्रकृति पुरुष को संस्कारित पुरुष में परिवर्तित करते हुए उनके मानसिक चिन्तन को चराचर जगत के संरक्षण के लिए परिपुष्ट करना। अतः संस्कृति का मूल आधार सम्पूर्ण सृष्टि को संरक्षण प्रदान करने का चिन्तन है। भारत में इसी चिन्तन पर महर्षियों ने विभिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं जिनमें प्राणी मात्र की रक्षा, चराचर जगत का संरक्षण, **सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामया** तथा अनेकान्तवाद आदि प्रमुख हैं। अतः भारत में जीवन के सम्पूर्ण आयामों में इसी अन्तः चेतना को जागृत

भारतीय संस्कृति का यह प्रयास है कि मानव न केवल मानवता के लिए चिन्तित हो अपितु वह अन्तःकरण से सम्पूर्ण चराचर जगत के लिए संरक्षक की भूमिका का निर्वहन करे।

करने का प्रयास किया जाता है। भारतीय संस्कृति का यह प्रयास है कि मानव न केवल मानवता के लिए चिन्तित हो अपितु वह अन्तःकरण से सम्पूर्ण चराचर जगत के लिए संरक्षक की भूमिका का निर्वहन करे। सृष्टि के लिए कल्याणकारी इस संस्कृति को भारत विकास परिषद् ने अपना सिद्धान्त बनाया है। व्यक्ति के जीवन के विविध आयाम हैं। व्यक्ति का प्रकटीकरण विविध प्रकारों से समाज के सम्मुख होता है। व्यक्ति न केवल अपनी वेशभूषा से अपितु अपने व्यवहार से भी सुसंस्कृत दृष्टिगोचर होना चाहिए। हमारा ध्येय है कि हम सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय कर्म करें। हमें देखकर प्रेम जागृत हो न कि भय।

भारत विकास परिषद् अपने संविधान में उद्देश्य एवं लक्ष्य के अन्तर्गत लिखता है कि -

(क) अपने देश की सांस्कृतिक, सामाजिक, शैक्षिक, नैतिक, राष्ट्रीय और आध्यात्मिक प्रगति के लिए उचित उपायों और साधनों को अंगीकार करना।

- (ख) भारतीय संस्कृति और परम्पराओं के आधार पर नृत्य, नाटक, संगीत, साहित्य, मानविकी और सामाजिक विज्ञान को बढ़ाना।

सम्पूर्ण संविधान की आत्मा इन दो धाराओं में प्रदर्शित हो जाती है। अर्थात् भारत विकास परिषद के कृतित्व का सिद्धान्त भारतीय संस्कृति के उन्नयन पर आश्रित है। यदि हम इन सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करें तो क्या परिभाषित होगा ?

- (क) इस खण्ड में सांस्कृतिक से लेकर आध्यात्मिक प्रगति के लिए उचित उपायों और साधनों के अंगीकार करने को लक्ष्य बताया गया है। अतः हम क्रमशः प्रत्येक बिन्दु की व्याख्या करेंगे।

1. **सांस्कृतिक प्रगति**— व्यक्ति का विकास द्वि-रूपेण होता है। प्रथम बाहरी विकास और द्वितीय आन्तरिक विकास। बाहरी विकास के अन्तर्गत उसके संसाधन, वेशभूषा, बाहरी आचरण आदि का समावेश होता है। जिसे हम एक सूत्र में कहते हैं कि यह व्यक्ति कितना सभ्य है? उसकी सभ्यता का विकास। व्यक्ति के आन्तरिक या मानसिक विकास को परिलक्षित करता है उसका आचार-विचार, अन्य प्राणियों के प्रति व्यवहार, जिसे हम आध्यात्मिक विकास या सांस्कृतिक विकास की संज्ञा देते हैं। ऐसे व्यक्ति को कहते हैं कि वह कितना सुसंस्कृत है या संस्कारवान हैं।
2. **सामाजिक प्रगति**— किसी भी देश का समाज वहाँ के निवासियों से बनता है। समाज की प्रथम इकाई परिवार है। परिषद् ने इस प्रथम इकाई को अपना आधार माना है अतः उसकी सदस्यता व्यक्ति की न होकर परिवार की है। भारतीय दर्शन में पुरुष और स्त्री का महत्व नहीं है। भारतीय दर्शन मातृत्व और पितृत्व को सम्मान देता है। अतः भारत में अर्द्धनारीश्वर की कल्पना की गयी है। परिवारों को सुसंस्कृत बनाते हुए, श्रेष्ठ समाज का निर्माण परिषद का उद्देश्य है। इसीलिए परिषद् 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को वरीयता प्रदान करती है।
3. **शैक्षिक प्रगति**— शिक्षा और ज्ञान ये दोनों शब्द पर्यायवाची नहीं हैं। परिषद् की मान्यता है कि शिक्षा हमें व्यवसाय से जोड़ती है जबकि ज्ञान हमारा विवेक जागृत करता है। ज्ञान अर्थात् समग्रता का चिंतन। शिक्षा जगत केवल व्यक्तिगत व्यवसाय से जुड़ी शिक्षा प्रदान करता है जबकि ज्ञान से तात्पर्य है कि सम्पूर्ण सृष्टि का ज्ञान। अतः भारत विकास परिषद् शिक्षा के साथ-साथ ज्ञान प्रदान करने का प्रयास भी करता है।
4. **नैतिक प्रगति**— भारतीय संस्कृति परिवार प्रधान संस्कृति है। परिवार को एक सूत्र में बाँधे रखने के लिए अधिकारों के स्थान पर कर्तव्य को प्रमुखता देने पड़ती हैं। अतः हमारी संस्कृति का आधार भोग न हो कर त्याग है। भारत में प्रत्येक स्त्री को माता के रूप में ही देखने की परम्परा है अतः व्यक्ति के नैतिक अर्थात् चारित्रिक

उन्नयन के लिए हर सम्भव प्रयास किया जाता है। परिषद् ने भी इसी सिद्धान्त की पूर्ति के लिए परिवार की सदस्यता को स्वीकार किया है।

5. **राष्ट्रीय प्रगति**-समाज विशेष के लिए पृथ्वी पर सीमाओं से रेखांकित भू-खण्ड, राष्ट्र है। किसी भी राष्ट्र की प्रगति तभी संभव है जब वह आन्तरिक एवं बाहरी आक्रमणों से सुरक्षित हो। देश के प्रत्येक नागरिक का चहुँपुंखी विकास हो। देश के समस्त भू-खण्ड का पर्यावरण सुरक्षित एवं स्वच्छ हो। परिषद् देश की सम्पूर्ण सुरक्षा के लिए कार्यरत है।
6. **आध्यात्मिक प्रगति**-आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री ने अध्यात्म की परिभाषा करते हुए कहा कि- 'अध्यात्म का अर्थ होता है-आत्मनिअधि अर्थात् अपने भीतर। इस दृश्यमान् शरीर के भीतर इंद्रियां हैं, इन्द्रियों से सूक्ष्म मन है, उससे सूक्ष्म है बुद्धि, उससे भी सूक्ष्म है आत्मा। आत्मा का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर ही हम मन एवं बुद्धि में आयी हुई विकृतियों को दूर कर परम पुरुषार्थ की सिद्धि कर सकते हैं।

इसी प्रकार हम संविधान के 'ख' खण्ड की व्याख्या करें-

(ख)-संस्कृति का प्रगटीकरण हमारी परम्पराओं के आधार पर होता है। परिषद् के संविधान ने इन शाश्वत एवं मूलभूत परम्पराओं का चयन किया है-

1. **नृत्य**-नृत्य कला हमारे उल्लास का प्रतीक है। जब सावन आता है और हरयाली छाती हैं तब मोर स्वतः ही नाचने लगते हैं। नृत्य प्राणीमात्र का शाश्वत भाव है। भारतीय संस्कृति ने नृत्यों की बहुविध परम्परा को जन्म दिया है। भारत के नृत्य प्रकृति के सौंदर्य का चित्रण तो करते ही हैं साथ में व्यक्ति के उल्लास को भी प्रदर्शित करते हैं। लेकिन वर्तमान में प्रकृति के रौद्र रूप को प्रदर्शित करते हुए व्यक्ति के भी रौद्र रूप का ही प्रदर्शन नृत्यों के माध्यम से किया जा रहा है। अतः परिषद् का उद्देश्य है कि हम उस नृत्य कला को संवर्द्धित करें जिसमें संस्कृति हो। जिन नृत्यों से हिंसा एवं उत्तेजना का प्रदर्शन होता है वह नृत्य भारतीय परम्पराओं को दूषित करते हैं।
2. **नाटक**-नाट्य शास्त्र हमारे जीवन का अमूल्य धन है। संवादों का प्रदर्शन ही नाटक की प्रस्तुतीकरण का मूल है। नाटक के माध्यम से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का चिंतन हम सरलता से व्यक्ति में संधान कर देते हैं। अर्थात् जीवन में संवाद प्रमुख हैं। संवादों से ही परिवारों और रिश्ते सभी सुरक्षित रहते हैं अतः भारतीय संवाद की इस नाट्य कला को जीवित रखना हमारा उद्देश्य है।
3. **संगीत**-जहाँ नृत्य हमारे उल्लास का परिचायक है वहीं संगीत हमारी आत्मा को तृप्त करने का साधन है। किस संगीत से तृप्ति प्राप्त होती है और किस संगीत से उत्तेजना यही हमारे चिन्तन और चयन का विषय होना चाहिए। संगीत व्यक्ति,

समाज और राष्ट्र के प्रति प्रेम सिखाता है। यदि प्रेम के स्थान पर द्वेष का बीजारोपण हो तब वह संगीत नहीं है।

4. **साहित्य**-विश्व कल्याण हित रचित साहित्य हमारा ध्येय है। समाधान मूलक साहित्य हमारा लक्ष्य है न कि समस्या मूलक। साहित्य से ही हमारे आचार-विचार अनुप्राणित होते हैं। अतः सत् साहित्य हमारी प्रथम आवश्यकता है। अतः हमें साहित्य की समस्त विधाओं पर कार्य करने की आवश्यकता है जिससे जन-मानस में भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ विचारों का जागरण हो सके।
5. **मानविकी**-मानवीय सभ्यता के विकास के आयाम-मानव में जाति, धर्म, रंग, वर्ण, लिंग आदि के आधार पर विभेद नहीं करना मानविकी शास्त्र का प्रथम सूत्र है अतः परिषद् मानवता की ही पक्ष धर हैं।
6. **सामाजिक विज्ञान**-भारत परिवार प्रधान देश है अतः परिवार निर्माण से लेकर समाज निर्माण की कल्पना भारत में ही है। हम आदर्श दम्पति की कल्पना के साथ-साथ आदर्श परिवार और आदर्श समाज की कल्पना भी करते हैं।

कृतित्व

हमने अभी तक सैद्धान्तिक पक्ष पर चर्चा की है। लेकिन प्रायोगिक रूप में हम कितने सफल हुए और ये सारे सिद्धान्त हमारे कृतित्व में कितने प्रदर्शित होते हैं इस पर चिन्तन आवश्यक है। परिषद् के दो मूल प्रकल्प हैं। प्रथम संस्कार प्रकल्प और द्वितीय सेवा प्रकल्प। संस्कार हमारा लक्ष्य और सेवा हमारा माध्यम है। किसी भी संस्था के मूल भूत अंग उसके सदस्य होते हैं। एक कहावत है कि धर्म चार पैरों पर खड़ा रहता है। सत्य, दया, तप और दान। यह कहा जाता है कि सतयुग में धर्म इन्हीं चारों पैरों पर खड़ा था। लेकिन हर युग में इसका एक पैर घटता चला गया। अतः त्रेता युग में तीन पैरों पर, द्वापर युग में दो पैरों पर और कलियुग में एक पैर पर धर्म खड़ा है। इस मिथक को सत्य माने तो आज कलियुग है और धर्म केवल दान पर खड़ा है। भारतीय व्यक्ति दान को स्वर्ग का सोपान मानता है। अतः जहाँ भी सेवा कार्य की झलक मिलती है वहीं व्यक्ति दान देने को तत्पर हो जाता है। उस संस्था से संलग्न होने का सहजता से प्रयास करता है। लेकिन भारत विकास परिषद् का उद्देश्य केवल दान द्वारा सेवा कार्य नहीं है। परिषद् की मान्यता है कि व्यक्ति के अन्दर संस्कार प्रदीप्त हों और वह चराचर जगत की सुरक्षा के लिए अपने कर्तव्यों का निर्वहन करे। अतः सेवा के माध्यम से एक सदस्य परिषद् की सदस्यता ग्रहण करता है। लेकिन उसके अन्दर संस्कार प्रकल्पों द्वारा संस्कृति को अन्तःसंधान करने का प्रयास किया जाता है। दान द्वारा सदस्यों में पदलिप्सा जागृत न हो इसका भी प्रयास संस्कार प्रकल्पों के माध्यम से किया जाता है। व्यक्ति निर्माण से परिवार निर्माण, समाज निर्माण और राष्ट्र निर्माण ही परिषद् का कृतित्व है। स्वर्ण लंका हमारा ध्येय नहीं, अपितु संस्कारित

दान द्वारा सदस्यों में पदलिप्सा जागृत न हो इसका भी प्रयास संस्कार प्रकल्पों के माध्यम से किया जाता है। व्यक्ति निर्माण से परिवार निर्माण, समाज निर्माण और राष्ट्र निर्माण ही परिषद का कृतित्व है। स्वर्ण लंका हमारा ध्येय नहीं, अपितु संस्कारित अयोध्या हमारा लक्ष्य है। अतः भारत विकास परिषद की सदस्यता लेते समय और उसका संचालन करते समय हमें परिषद के सिद्धान्तों और कृतित्व का पूर्ण रूपेण ध्यान रखना होगा।

अयोध्या हमारा लक्ष्य है। अतः भारत विकास परिषद की सदस्यता लेते समय और उसका संचालन करते समय हमें परिषद के सिद्धान्तों और कृतित्व का पूर्णरूपेण ध्यान रखना होगा। हम तभी अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकेंगे। हमारा लक्ष्य सुरक्षित, संरक्षित राष्ट्र और उसका समाज है। हमारा लक्ष्य भारत को सांस्कृतिक भारत बनाना है अतः जिस माध्यम से भी भारतीयता के दर्शन हों, उन्हें ही हमें अपने कृतित्व में सम्मिलित करना है। अतः हमारी भाषा, लिपि, साहित्य, नृत्य, संगीत आदि के संरक्षण की आवश्यकता है। तभी हम गर्व से कह सकेंगे कि हमारा राष्ट्र भारत है। भारत ज्ञान, विज्ञान, भाषा, साहित्य आदि में अग्रणी था और आज भी है। इसलिए जिस भी भाषा से, जिन भी शब्दों से भारतीयता विलग हो उसे त्यागने का प्रयास करना चाहिए।

-7 चरक मार्ग, उदयपुर

५

सफलता से डर

-जार्ज बर्नार्ड शॉ

मुझे सफलता से डर लगता है। सफलता प्राप्त करने के बाद ऐसा लगता है जैसे आदमी ने इस धरती पर अपना सारा काम खत्म कर लिया हो। मैं हमेशा कुछ बताने की हालत में रहना चाहता हूँ और चाहता हूँ कि मेरी मंजिल मेरे पीछे नहीं, बल्कि मेरे सामने हो। फिर भी, मैं सफल व्यक्तियों के साथ इतना लड़ना चाहता हूँ, उन पर हमला करना चाहता हूँ, ताकि वे पत्थरों के किले बनायें। इससे आदमी में शक्ति आती है और इससे वह सीखता भी है।

प्रशासनिक सुधार का मंत्र

—v जगमोहन

भारत के संदर्भ में सभी तरह के सुधारों का एक ही यंत्र है—हमारी मनोवृत्ति का कायाकल्प। 2005 में अपनी पुस्तक 'सोल एंड स्ट्रक्चर ऑफ गवर्नेन्स इन इंडिया' के प्रकाशन के बाद इंडिया इंटरनेशनल में मुझे भाषण देने के लिए बुलाया गया। सभागार में राजनीतिक विश्लेषक, रिटायर्ड आईएएस अधिकारी, कानूनविद, प्रोफेसर आदि मौजूद थे। जैसा कि प्रायः होता है, संबोधन के उपरांत लोगों ने मुझसे सवाल पूछने शुरू कर दिए—खासतौर से सुशासन की आत्मा से संबंधित। मैंने जवाब दिया कि आत्मा से मेरा आशय आत्मबल से है। यह जीवन का सत्य है। यह व्यक्ति की चेतना को आकार देता है और उसके आचार-विचार को निर्धारित करता है। यह एक ऐसी धुन है जो मस्तिष्क के अदृश्य पावन स्थल से निकलती है। मैंने एक प्रति-प्रश्न भी उठाया—“आखिर क्या कारण है कि अदालती फैसले और मीडिया में भ्रष्टाचार व छल-कपट की बार-बार भर्त्सना होने तथा सीबीआई व प्रवर्तन निदेशालय जैसी संस्थाओं के गठन के बाद भी ये बुराइयां परिमाण और तीव्रता, दोनों रूपों में बढ़ रही हैं?”

इसका कोई जवाब नहीं आया तो मैंने इसके उत्तर के रूप में उन्हें यह समझाने की चेष्टा की कि यह सब इसलिए हो रहा है कि भारत में किसी ने भी वह मिट्टी तैयार नहीं की जिसमें रचनात्मक और उच्च विचारों के बीज रोपे जा सकें। उन्हीं से तो रसीले फलों की बहार फलती-फूलती है। लंबे समय से भारत सामाजिक और सांस्कृतिक पतन की बंजरभूमि बन गया है, जहां स्वस्थ से स्वस्थ बीज भी अंकुरित नहीं हो सकते। प्राथमिक कार्य तो इस बंजर भूमि को सुधारना है। कायापलट की जबरदस्त खुराक से जमीन को फिर से उर्वर बनाना है। उसी के बाद लोगों के दिमाग में सज्जनों के सद्बचन घुसेंगे और संस्थागत संरचना के सकारात्मक परिणाम हासिल होंगे। स्पष्ट है, ईमानदार लोगों के बिना सुबुद्धि की खूबसूरत इमारत बनाना संभव नहीं है। स्वामी विवेकानंद ने ठीक ही कहा था, “आप हजारों समाजों की स्थापना कर सकते हैं, बीस हजार राजनीतिक सभाएं बना सकते हैं, पचास हजार संस्थान बना सकते हैं, किन्तु ये सब तब तक व्यर्थ है जब तक प्यार, सद्भावना और ऐसा दिल न हो जो सबके लिए धड़कता हो। ऐसा दिल कहां बनेगा?”

इसकी नींव कहाँ है ?” पिछले साठ सालों से राष्ट्र-जीवन के संदर्भ में मिलने वाला संदेश स्पष्ट और तीव्र है। अधिकांश समस्याओं की जड़ दूषित मनोवृत्ति है। जीवन के प्रत्येक अंग से उभरने वाली समस्याओं के संदर्भ में यह बात लागू होती है। यह खोट ही शासन की क्षमताओं का विकास बाधित करती है। इसी वजह से प्रशासन की रग-रग में भ्रष्टाचार फैल रहा है और इसी कारण केन्द्र व राज्य, दोनों स्तरों पर संकीर्ण और गैर-जिम्मेदार नेतृत्व उभर रहा है। इससे उन ताकतों को बढ़ावा मिलता है जो विध्वंस और आतंकवाद में लिप्त हैं। यह बुराई कुछ समझदार और निष्ठावान लोगों के प्रयासों पर भी पानी फेर देती है। समाज या राष्ट्र की ढीली-ढाली मनःस्थिति उसी प्रकार स्थितियों को तबाह कर डालती है जिस प्रकार क्राकरी की दुकान में घुसा कोई सांड सब कुछ तहस-नहस कर देता है।

इस संदेश को यदि छोड़ भी दिया जाए तो इतिहास के परिवर्तन हमें क्या बताते हैं। वे बताते हैं कि सभ्यता की राह में निर्णायक मोड़ तभी आए हैं जब लोगों की मनोवृत्ति में आमूल-चूल परिवर्तन दृष्टिगत हुआ है। पंद्रहवीं सदी के मध्य से यूरोप ने मध्यकाल से आधुनिक युग की लंबी यात्रा शुरू कर दी थी। तब पुनर्जागरण शुरू हुआ और इसने ऐसी शक्तियों को आगे बढ़ाया जो लोगों के मस्तिष्क को उत्प्रेरित करके बौद्धिक रूप से शक्तिशाली, सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील और सामाजिक रूप से मानवीय बनाती थीं। चेतन मस्तिष्क से ही वैज्ञानिक सोच, जिज्ञासा की भावना, प्रगति के विचार और धर्म व सत्ता के अन्यायपूर्ण फैसलों का विरोध करने का साहस पैदा होता है। लंबे सार्वजनिक जीवन के दौरान एक ख्याल बार-बार मेरे जहन में आता रहा कि भारत की आत्मा बड़ी मजबूत थी, किन्तु इसका दिमाग उस दूषित सामग्री से भर गया जो इसने सभ्यता के पतन के लंबे दौर में ग्रहण की। इन दूषित सामग्रियों का ही नतीजा है कि भारतीय समाज के सभी क्षेत्र और राष्ट्र के सभी अंग नैतिक रूप से बीमार नज़र आने लगे। मैं आश्चर्य हूँ कि जब तक भारतीय जनमानस का कायाकल्प नहीं होता और भारतीय आत्मा को उसकी अशुद्धताओं से मुक्ति नहीं मिलती तब तक देश में गैर-जिम्मेदार नागरिक, स्वार्थी नेतृत्व और भ्रष्ट राजनीति का बोलबाला समाप्त नहीं होगा। कभी-कभी मैं यह सोचने को बाध्य हो जाता हूँ कि क्या हमारी समस्याओं की जड़ें इतनी गहरी हैं कि इन्हें हल करने के लिए एक किस्म की क्रांति की जरूरत पड़ेगी, किन्तु भारत का इतिहास और विरासत गवाह हैं कि इसका उपचार क्रांति के बजाय पुनर्जागरण से ही हो सकता है।

क्रांति और पुनर्जागरण के बीच एक आधारभूत अंतर है। क्रांति एक आंधी की तरह होती है, जो पुराने मूल्य, पुराने आचरण, पुराने संस्थान और पुराने प्रासादों को उखाड़ फेंकती है। यह अतीत को उड़ा देती है। यह जितना निर्माण करती है उससे अधिक विध्वंस कर देती है। क्रांति की बड़ी भारी कीमत चुकानी पड़ती है। यह अपने ‘ईश्वर’ को सिंहासनारूढ़ करती है, जो बाद में मिथ्या साबित हो सकता है। अक्सर

ऐसा होता है कि विवेकी, न्यायप्रिय, सच्चरित्र और श्रेष्ठ लोग क्रांति के अगुवा नहीं रह पाते, वे तो इसके शिकार बन जाते हैं। दूसरी तरफ पुनर्जागरण एक ताजा हवा का झोंका है, जो अंधियारी और घुटनभरी रात में हौले से आता है। यह रात के धुंधलके और कुहासे को दूर करता है और ऊषाकाल लाता है। ऐसी ऊषा जो नई तो है, किन्तु इतिहास की गोद में समाए प्रभात से अलग नहीं है। 19वीं सदी के अंत में और बीसवीं सदी के आरंभ में भारत ने भी पुनर्जागरण देखा, जो इसके सफल स्वतंत्रता संग्राम का मूलाधार था। वह सामाजिक और सांस्कृतिक ताने-बाने में सुधार और पुनर्जागरण का नया दौर लाया था। 1947 में देश को आजादी मिल जाने के बाद इस पुनर्जागरण की आत्मा कहीं खो गई। अगर हम चाहते तो आजादी के आंदोलन के दौरान सामाजिक और सांस्कृतिक ताने-बाने में आए नवसंचार का लाभ उठा सकते थे, लेकिन ऐसा नहीं हो सका। इसलिए नहीं हो सका, क्योंकि हमारा राजनीति नेतृत्व राजनीति और इसकी ताकत से मंत्रमुग्ध था। राष्ट्र निर्माण के महती कार्य में भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता का मिश्रण करने के गांधीवादी प्रयासों को देश ने इतिहास की रद्दी की टोकरी में फेंक दिया।

आजादी के बाद किसी भी कद के नेता ने इस बात पर गौर नहीं किया कि जातिवाद, सुधार विरोधी रवैया और अज्ञानता से केवल कमजोर व धनलोलुप राजनीतिक ढांचा ही खड़ा हो सकता है। स्वस्थ सामाजिक और सांस्कृतिक जड़ों के अभाव में इसकी रगों में विषैला रक्त प्रवाहित हो रहा है। भारत की राजनीति में विरूपताएं उभरना अवश्यंभावी था। इसके अलावा राजनीति अनेक अन्य गंभीर रोगों का भी शिकार हो गई। राज्य के तंत्र के प्रत्येक उपकरण के जोड़ खुल रहे हैं, जिसके चलते व्यवस्था पतन की राह पर अग्रसर है। व्यवस्था का जो बाहरी आवरण है वह इतनी बुरी अवस्था में नहीं है कि एकदम से चिंतित हो जाया जाए, लेकिन यथार्थ यही है कि इसके अंदर से उभर रहे संकेत अपशगुन की ओर इशारा कर रहे हैं।

५

—लेखक पूर्व राज्यपाल एवं केन्द्रीय मंत्री हैं।

लिखते तो वे लोग हैं जिनके अंदर कुछ दर्द है, अनुराग है, लगन है,
विचार है, जिन्होंने धन एवं भोग-विलास को जीवन का लक्ष्य बना
लिया है वे क्या लिखेंगे।
—प्रेमचंद

प्रशासन एवं आई.ए.एस.

५

सूर्या फाउन्डेशन नई दिल्ली में पर्याप्त समय से एक थिंक टैंक कार्यरत है। इस थिंक टैंक में विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ विद्वान, वैज्ञानिक एवं विभिन्न सेवाओं के ख्याति प्राप्त सेवा निवृत्त अधिकारी सम्मिलित हैं। यह थिंक टैंक विभिन्न सरकारी विभागों एवं उनकी कार्यप्रणाली पर शोध करके अपनी सिफारिशों उन विभागों को भेजता है। इसकी अनेक सिफारिशों को सरकार द्वारा स्वीकार करके क्रियान्वित भी किया गया है। प्रस्तुत आलेख में थिंक टैंक द्वारा भारतीय प्रशासनिक सेवाओं (I.A.S.) पर की गई शोध को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। -संपादक

आई.ए.एस. सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के बनाने एवं उन्हें कार्यान्वित करने का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। किन्तु पिछले कुछ समय से इस उपकरण की कार्यकुशलता, दक्षता, ईमानदारी एवं निष्पक्षता में कमी आई है।

इसके कई कारण हैं। आई.ए.एस. अधिकारियों की नियुक्ति की प्रणाली, तरक्की, उनकी पृष्ठभूमि, उनका प्रशिक्षण सभी में परिवर्तन हुए हैं। सबसे बड़ा परिवर्तन यह है कि पंचायत, नगर पालिकाएँ, जिला परिषद, पुलिस, सरकारें एवं संघीय सरकार स्तर पर राजनैतिक नेतृत्व सक्रिय रूप से भाग लेने एवं उसे प्रभावित करने को उत्सुक है।

ऐसी परिस्थितियों में प्रशासनिक सेवाओं को अपने को ऐसे ढाँचे में ढालना है जिससे वे इन हालात में भी पूर्ण क्षमता से कार्य कर सकें एवं अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सकें। इस संबंध में थिंक टैंक ने निम्न सुझाव दिये हैं:-

सेवाओं में भर्ती होने के समय आयु-इस समय सामान्य श्रेणी के उम्मीदवारों के लिये आयु सीमा 21-30 वर्ष है एवं वे चार बार तक प्रतियोगिता में बैठ सकते हैं। पिछड़ी जातियों के लिये आयु सीमा 21-33 वर्ष एवं 5 अवसर तथा अनुसूचित जातियों के लिये आयु सीमा 21-35 वर्ष एवं 7 अवसर मिलते हैं।

ये आयु सीमाएं अधिक हैं एवं इस आयु तक एक उम्मीदवार का व्यक्तित्व बन चुका होता है। वह नई परिस्थितियों में अपने को नहीं ढाल पाता। अतः अनारक्षित उम्मीदवारों के लिये आयु सीमा 21-25 वर्ष एवं आरक्षित के लिये 21-30 वर्ष होनी चाहिये।

निर्बल वर्ग के उम्मीदवार अपनी तथा पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं छोटे नगरों तथा कस्बों की शिक्षण-संस्थानों में अध्ययन वे कारण प्रायः सामान्य वर्ग से पिछड़े हुए रहते हैं। अतः उनके लिये निशुल्क कोचिंग की व्यवस्था आवश्यक है। यह व्यवस्था सरकार स्वयं कोचिंग सेन्टर खोलकर या काम कर रहे अन्य सैंटरों को मान्यता देकर कर सकती है।

आई.ए.एस. भर्ती की प्रक्रिया-आई.ए.एस. अधिकारियों की भर्ती दो प्रकार से होती है-सीधी भर्ती एवं राज्य की अन्य सेवाओं से प्रोन्नति के द्वारा। सीधी भर्ती के लिये एक सम्मिलित सेवा परीक्षा आयोजित की जाती है। संघ लोक सेवा आयोग द्वारा यह परीक्षा तीन चरणों में की जाती है। प्राथमिक परीक्षा, मुख्य परीक्षा एवं साक्षात्कार। चयन हो जाने के पश्चात् मसूरी एकेडमी में प्रशिक्षण दिया जाता है। ये समस्त परीक्षाएं उम्मीदवार के पुस्तकीय ज्ञान, विषयों में उसकी प्रवीणता एवं परीक्षाओं में अंक प्राप्त करने की क्षमता को ही जांचती हैं।

आवश्यकता इस बात की है उम्मीदवार में संवेदनशीलता, स्वभाव की स्थिरता, धैर्य, नेतृत्व के गुण, उदार दृष्टिकोण, कुछ नया सोचने एवं कर दिखाने का साहस कितना है इसका परीक्षण होना चाहिये एवं इन्हीं गुणों के आधार पर उसका चयन किया जाना चाहिये।

क्योंकि परीक्षा में बैठने वाले उम्मीदवारों की संख्या अत्यधिक होती है अतः प्राथमिक परीक्षा तो आवश्यक है किन्तु मुख्य परीक्षा केवल तीन प्रश्न पत्रों तक ही सीमित रहनी चाहिये। एपटिच्यूड टैस्ट, निबन्ध जिससे लिखने एवं अपनी बात समझाने की क्षमता नापी जा सके एवं कोई ऐच्छिक विषय। प्राथमिक परीक्षा में उत्तीर्ण परीक्षार्थी को कम से कम दो बार मुख्य परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जानी चाहिये। असफल उम्मीदवार को हर बार प्राथमिक परीक्षा देने के लिये विवश करना साधनों, समय एवं क्षमता की बरबादी है।

विभिन्न विभागों से प्रोन्नति पाकर जो अधिकारी आई.ए.एस. में आते हैं उनका कोटा आई.ए.एस. कैडर के 1/3 का है। इनका चयन एक कमेटी करती है जिसमें संघ लोक सेवा आयोग का एक सदस्य, संबंधित राज्य का मुख्य सचिव एवं पर्सनल विभाग का एक प्रतिनिधि होता है। चयन का आधार अधिकारी की गोपनीय चरित्र पंजिका होती है। इसके स्थान पर संघ लोक सेवा आयोग द्वारा एक लिखित परीक्षा आयोजित की जानी चाहिये जिसमें 10-15 वर्ष की सेवा अवधि वाले ऐसे अधिकारियों को बैठने की अनुमति होनी चाहिये जिनकी आयु 50 वर्ष से अधिक न हो। इससे पारदर्शिता बनी रहेगी।

कैडर ऐलाटमेंट-इस समय प्रत्येक उम्मीदवार से केवल इतना भी पूछा जाता है कि क्या वह अपने गृह राज्य में जाना पसन्द करेगा। यह व्यवस्था असंतोषजनक एवं असुविधाजनक है। अनेक उम्मीदवार स्वास्थ्य, मौसम, परिस्थितियों इत्यादि के आधार पर दूसरे राज्यों में नियुक्ति के लिये प्रार्थना करते हैं। इसके स्थान पर प्राथमिकता के आधार पर तीन राज्यों का विकल्प मांगा जाना चाहिये एवं उसमें कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिये।

मसूरी ऐकेडमी में प्रशिक्षण-ऐकेडमी में दिये जा रहे प्रशिक्षण में अनेक परिवर्तन किये गये हैं। किन्तु इसमें आमूल-चूल बदलाव की आवश्यकता है। जिलाधिकारी को अब शान्ति व्यवस्था से भी अधिक पी.डब्ल्यू.डी., सिंचाई, बिजली, पंचायती राज इत्यादि से जूझना पड़ता है। इसके अतिरिक्त विधायकों, सांसदों इत्यादि जन-प्रतिनिधियों से भी निरन्तर पाला पड़ता है। मानवाधिकार एवं जनसाधारण की समस्याओं को हल करने की जिम्मेदारी जिले के अधिकारी की ही होती है। उसे संविधान, अर्थशास्त्र, कानून, मैनेजमेंट इत्यादि का भी समुचित ज्ञान होना चाहिये।

किन्तु ऐकेडमी का प्रशिक्षण किताबी अधिक एवं व्यवहारिक कम है। यह इतना बोझिल है कि ट्रेनी को थका देता है। इसमें लीडरशीप एवं मैनेजमेन्ट के क्षेत्र में हुए नये विकास को शामिल नहीं किया गया है। इस प्रशिक्षण में वर्कशाप, सेमिनार एवं प्रोजेक्ट वर्क पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये। बाहर के विशेषज्ञों को भी बुलाया जाना चाहिये।

फील्ड ट्रेनिंग-आई.एस.एस. अधिकारियों की फील्ड ट्रेनिंग भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्हें दो अलग जिलों में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। यह ट्रेनिंग कानूनों को लागू कराना-जैसे तहसीलदार इत्यादि एवं विकास कार्य करना जैसे-बी.डी.ओ. इत्यादि, दोनों ही प्रकार की होनी चाहिये। वरिष्ठ अधिकारियों-जैसे डिविजनल कमिश्नर-को उनके प्रशिक्षण में विशेष रुचि लेनी चाहिये एवं उन्हें विभिन्न प्रकार के कार्य सौंपे जाने चाहिये।

एक आई.ए.एस. अधिकारी के प्रथम दस वर्ष जिले में ही बीतते हैं। अतः जिले में होने वाले प्रत्येक कार्य-कलाप में उसे दक्ष हो जाना चाहिये। जनसाधारण एवं विशेष रूप से निर्बल वर्ग की कठिनाईयों एवं आवश्यकताओं के प्रति उसे जागरूक एवं संवेदनशील होना चाहिये। साथ ही उसमें इतनी क्षमता हो कि विभिन्न विभागाध्यक्षों को साथ लेकर चल सके।

केन्द्र में प्रतिनियुक्ति-एक आई.ए.एस. अधिकारी की केन्द्र में नियुक्ति उसकी सेवा का आवश्यक अंग है। केन्द्र में जाने से उसमें एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण विकसित होता है एवं इससे राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा मिलता है। केन्द्रीय सरकार एक पैनल बनाती एवं उस पैनल में शामिल अधिकारी ही केन्द्र में कार्य करते हैं। शेष राज्यों में ही कार्य करते रहते हैं। कुछ अपवाद भी होते हैं जो केन्द्र में या राज्यों में ही कार्यरत रहकर प्रोन्नति पाते हैं। इस मामले में प्रतिनियुक्ति की अवधि का सख्ती से पालन किया जाना चाहिये एवं प्रत्येक अधिकारी को उच्चतम पद पर पहुँचने के पूर्व केन्द्र में प्रतिनियुक्ति पर अवश्य जाना चाहिये।

विशेषज्ञता-आई.ए.एस. अधिकारियों को राज्य या केन्द्र कैडर की किसी भी पोस्ट पर स्थानंतरित किया जा सकता है। उन्हें प्रायः ऐसे ही विभागों में भेज दिया जाता है जहाँ

उनके अनुभव एवं विशेषज्ञता का कोई उपयोग नहीं हो पाता है। अधिक अच्छा होगा कि उन्हें कुछ विभागों जैसे-कृषि, स्वास्थ्य, ग्राम विकास, आर्थिक मामलों आदि में विशेषज्ञता प्राप्त करने दी जाये एवं फिर मूल्यांकन के आधार उन्हें उन्हीं क्षेत्रों से संबंधित विभागों में भेजा जाये।

इन अधिकारियों की योग्यता का मूल्यांकन करके उन्हें आई.आई.एम. एवं अन्य ऐसे संस्थानों एवं विशेष प्रशिक्षण दिलाया जाना चाहिये। उद्योग जगत की प्रख्यात हस्तियाँ भी उन्हें अपने अनुभव बतला सकती हैं। सब प्रकार से प्रशिक्षित एवं दक्ष अधिकारियों को ही सचिव पद पर प्रोन्नत किया जाना चाहिये।

ट्रांसफर तथा पोस्टिंग-किसी राज्य में नये राजनैतिक दल के सत्ता में आने या उसी दल का मुख्यमंत्री बदलने पर प्रायः सबसे पहला परिवर्तन आई.ए.एस. अधिकारी एवं विशेष रूप से जिलाधिकारियों के ट्रांसफर होते हैं। राजनीतिज्ञों द्वारा ट्रांसफर का उपयोग इन अधिकारियों को दंडित करने या उनसे अपना मनचाहा काम कराने के लिये भी किया जाता है।

केन्द्र में एक नियुक्ति समिति होती है जो इस सब कार्य को देखती है। राज्यों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है अतः राज्यों में भी सिविल सर्विस बोर्ड बनाये जाने चाहिये जो ट्रांसफर एवं पोस्टिंग के सिद्धांत एवं नियम स्वयं तय करें। महत्वपूर्ण नियुक्तियों के लिये यह बोर्ड अधिकारियों का पैनल तैयार करेगा एवं उनके ही आधार पर मुख्यमंत्री द्वारा नियुक्तियों की जायेगी।

डी.जी.पी., कैबिनेट सचिव, मुख्य सचिव इत्यादि के पदों पर निरन्तरता की आवश्यकता है अतः उनकी नियुक्ति की एक निश्चित अवधि दो या तीन साल की निर्धारित की जानी चाहिये। किसी भी दशा में उनकी इस अवधि को नहीं बढ़ाया जाना चाहिये एवं न ही कोई पुनर्नियुक्त दी जानी चाहिये।

वार्षिक मूल्यांकन-यह मूल्यांकन अधिकारियों की पदोन्नति एवं भावी कैरियर का आधार होता है। अधिकारी के विषय में उच्चाधिकारी अपनी गोपनीय टिप्पणी देते हैं एवं उसे प्रोन्नति के समय देखा जाता है। किन्तु यह एक रूटीन में बदल गया है एवं इन टिप्पणियों के आधार पर अधिकारी की प्रोन्नति कम ही रुक पाती है।

इस मामले में सेना में अपनाई गई पद्धति बेहतर है। वहां यदि अधिकारी का प्रदर्शन उच्चकोटि का नहीं होता तो उसे मेजर या लैफ्टिनेंट कर्नल के पद से ही सेवा निवृत्त होना पड़ता है। यदि किसी अधिकारी का कार्य निरंतर असंतोषजनक है तो उसे 15 वर्ष बाद सेवा निवृत्त कर दिया जाना चाहिये।

५

भारतीय प्रशासनिक परम्परा

५ मुकुन्द बिहारी (राजस्थान पुलिस सेवा)

भारत के लोकतांत्रिक एवं जनकल्याणकारी प्रशासन की अवधारणाएं कोई नई बात नहीं हैं, बल्कि ये ही बातें भारतीय राज्यव्यवस्था की प्राण या आत्मा थीं। यहां राज्य-प्रशासन अपने आप में साधन मात्र था, साध्य सदैव जन-कल्याण रहा है। जन-मान्यता तथा जन-आकांक्षा का अंकुश सदैव राजा व राज्य अधिकारियों पर रहता था तो न्याय-विधि, नैतिकता व कर्तव्य की धार्मिक परम्पराएं अलिखित संविधान के रूप में सम्पूर्ण भारतवर्ष के राज्यों के प्रशासन तंत्रों के आधारभूत व मार्गदर्शक सिद्धान्तों की तरह मान्य थीं। किसी भी युग में सम्पूर्ण भारत भले ही एक साम्राज्य के तहत हो या अनेक राज्यों में विभक्त, राज्य-प्रशासन की व्यवस्था एवं प्रशासनिक संचालन कार्य इन्हीं सिद्धान्तों से अनुप्राणित थे।

राजा एवं मंत्रीगण गाड़ी के दो पहियों की तरह राज्यकार्य संचालित करते थे एवं विस्तृत प्रशासन तंत्र गाड़ी की धुरी था। मंत्रीगण विभिन्न प्रशासनिक विभागों के अध्यक्ष थे। प्राचीन व मध्यकालीन भारत के विभिन्न काल-खण्डों में प्रशासनिक व्यवस्थाओं के मुख्य लक्षणों एवं विशेषताओं पर दृष्टिपात करते हुए हम प्रशासन की भारतीय परम्परा को समझने की चेष्टा कर सकते हैं।

वैदिक शासन प्रणाली

प्रारम्भिक वैदिक काल से ही ग्राम प्रशासन की मूलभूत इकाई थे जो स्वशासी व आत्मनिर्भर थे। ग्राम के लोगों के हितों की रक्षा का दायित्व 'ग्रामणी' नामक पदाधिकारी का था जो ग्राम का सामान्य प्रशासन देखता था। ग्राम में बड़ी इकाई विश थी जिसका मुखिया विशपति था।

अनेक विशों से बना जन या जनपद राजा या राजन् द्वारा शासित होता था एवं उसे जन का गोप्ता या रक्षक भी माना गया था। राजा के पद की उत्पत्ति अराजकता एवं मत्स्य-न्याय को रोकने तथा बाह्य आक्रमणों से रक्षार्थ हुई थी। राजा जनपद निवासियों को शान्ति व सुरक्षा के साथ विकास के अवसर सुलभ करवाता था। वैदिक साहित्य में राजा के निर्वाचन के उद्घरण यत्र-तत्र मिलते हैं। अथर्व वेद से सूचना मिलती है कि "प्रजा तुम्हें

राज्य के लिए वरण करती है।” अन्यत्र कहा गया है कि ज्ञानवान विद्वानों एवं नेताओं के साथ तेरा वरण करती है।

वंशानुगत राज्याधिकार जनता के अनुमोदन पर निर्भर था तथा राष्ट्रहित में कार्य न करने पर राजा को निर्वासित भी किया जा सकता था।

वैदिककालीन जन-सभाएं राजा पर अंकुश रखती थीं एवं प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाती थीं।

प्राचीनतम जनसभा ‘विदथ’ आर्थिक, सैन्य, धार्मिक एवं सामाजिक सभी तरह के कार्य करती थीं। इसमें महिलाएं भी सक्रिय रूप से हिस्सा लेती थीं।

कालान्तर में ‘सभा एवं समिति’ का महत्व बढ़ गया जिन्हें प्रजापति की दो पुत्रियां कहा गया। राजा के भ्रष्ट या न्यायमार्ग से दूर होने पर इनमें पर्याप्त विचार-विमर्श का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में सभा को ‘नरिष्ट’ (वाद-विवाद स्थल) एवं ‘अनति’ कहा गया है अर्थात् जिसके द्वारा किए गए निर्णयों का उल्लंघन नहीं किया जा सके।

‘सभा’ विशिष्ट व्यक्तियों की छोटी संस्था थी जो राजनीतिक एवं प्रशासनिक कार्यों के साथ-साथ न्यायिक कार्य भी करती थी। मैत्रायणी संहिता में सभा में ‘ग्राम वादिन’ द्वारा न्यायिक कार्य-सम्पादन का उल्लेख है जिसमें सभाचर सहयोग करते थे। ग्राम-प्रशासन के समस्त विषय सभा के अधीन थे जिसके सदस्य अत्यन्त सम्माननीय निष्पक्ष व्यक्ति होते थे। राजा भी प्रत्येक निर्णय के लिए सभा की सहमति प्राप्त करता था।

‘समिति’ एक व्यापक सम्मेलन या बड़ी संख्या थी जो सम्भवतः राज्य की विशाल जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली केन्द्रीय संस्था थी। राजा के निर्वाचन, पुनर्निर्वाचन या निर्वसन में यह संस्था ‘जन’ या ‘जनपद’ का प्रतिनिधित्व करती थी। समिति सामाजिक एवं सामुदायिक मामलों पर भी विचार करती थी। राष्ट्र की समृद्धि हेतु राजा व समिति में मत-वैभिन्य का न होना आवश्यक माना गया था। शत्रुओं पर विजय पाने एवं प्रशासनिक स्थिति सुदृढ़ करने हेतु राजा को समिति के समर्थन की आवश्यकता होती थी।

स्पष्ट है कि समिति आज की संसद के समान होती थी जो राजा का चयन करती थी। राज्यारोहण के समय राजा धर्म या विधि की रक्षा व संस्थापन की शपथ लेता था। राजा को कहा जाता था कि ‘तुम्हें यह राष्ट्र दिया जाता है, कृषि के लिए, जनता के क्लेश के लिए और सर्वविध पोषण के लिए एवं उन्नति के लिए।’

इससे प्रतिध्वनित होता है कि राजा को राज्य एक धरोहर के रूप में सौंपा जाता था एवं राजा के उस पर अधिकृत रहने की कसौटी जनता की प्रगति एवं कुशलता थी।

वहीं सभा आज की मंत्रिपरिषद् के समान थी जिसमें विद्वान्, अनुभवी एवं सम्माननीय व्यक्ति होते थे जो प्रशासनिक एवं न्यायिक कार्यों में जो राजा का हाथ बंटाते थे।

उत्तर वैदिक काल में परिवहन के साधनों, तकनीक एवं उद्योग-धंधों के विकास के

साथ जनपद का विस्तार बड़े भू-क्षेत्र में हुआ। साथ ही एक समुचित कर प्रणाली की सुव्यवस्थित शुरूआत हुई और प्रशासनिक तंत्र की भी।

प्रारम्भ से ही भारतीय प्रशासन में 'पुरोहित' का पद विशिष्ट रहा है जिस पर ऐसा व्यक्ति आरूढ़ होता था जो निर्विवाद रूप से निष्पक्ष एवं निस्वार्थ होने के साथ-साथ धर्मशास्त्रों का ज्ञाता होता था। वैदिक साहित्य में विधि या व्यवहार के लिए 'धर्मन्' (बाद में धर्म) शब्द का प्रयोग हुआ है जो ऐसे नियमों का संग्रह था जिसके प्रावधान समाज की व्यवस्था तथा नैसर्गिक नियमों के द्योतक थे। पुरोहित के लिए 'राष्ट्रगोप' शब्द का प्रयोग किया गया है जो राजा को राजनीतिक मामलों में परामर्श देने के साथ धार्मिक अनुष्ठानों का सम्पादन भी करता था। विधि विशेषज्ञ के रूप में वह वर्तमान 'अटार्नी जनरल' की भाँति भी था।

वैदिककाल में उच्च पदाधिकारियों एवं मंत्रियों को 'रत्निन' की संज्ञा दी गई जो कानून-व्यवस्था एवं राजस्व संग्रहण के नियामकीय कार्यों से लेकर जनकल्याण के विभिन्न कार्यों का सम्पादन भी करते थे। सैन्य संचालन का कार्य सेनापति करता था। 'भागदुध' कर संग्रह करता एवं राज्य के राजस्व का हिसाब रखता था तो 'असावाप' लेखाकार का कार्य करता था। 'गोविकर्ता' राज्य के गोधन का अधिकारी था तो 'सत्ता' राज्य के दुर्ग तथा महल का अधिकारी था।

राजा को न्याय का महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता था। राजा के अतिरिक्त ऐसे अधिकारियों का भी उल्लेख मिलता है जो न्यायिक कार्यों का सम्पादन करते थे अथवा विवादों में मध्यस्थ का कार्य करते थे वैदिक साहित्य में उल्लिखित 'मध्यमसि' सम्भवतः मध्यस्थ या न्यायाधीश था तो 'स्थपति' मुख्य न्यायाधीश होता था। ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे विवादों का फैसला 'ग्राम्यवादिन' करता था।

वैदिक काल में उत्तरार्द्ध में कृषि एवं उद्योग धन्धों की वृद्धि तथा आवगमन के साधनों के विकास के साथ नगरों का उदय हुआ तथा महात्मा बुद्ध के काल में हम उत्तर भारत एवं मध्य भारत में महाजनपदों का उदय देखते हैं। इस समय दो प्रकार की शासन व्यवस्थाएं काम कर रही थीं—राज्यतंत्रात्मक और गणतंत्रात्मक। वैदिक जन-जातियों से उद्भूत स्वतन्त्र गणतन्त्रात्मक जातियों ने बड़े पैमाने पर अपनी जातीय परम्परा को अक्षुण्ण रखा।

प्राचीन गणतंत्र

गणतन्त्रों में राजत्व अनुवंशिक नहीं था। राज्य के प्रमुख को चुनाव प्रक्रिया से नियुक्त किया जाता था जिसे 'महासम्मत' कहा जाता था। सम्पूर्ण शक्ति गणसंघ की सभा में निहित होती थी। विज्जसंघ की प्रशासनिक व्यवस्था के संचालन हेतु संघ की सभा में 7707 राजा थे जो 1.68 लाख जनसंख्या में से चुने जाते थे। इनसे इतने ही उपराजा,

सेनापति एवं भाण्डारिक थे। संघ का अधिवेशन स्थल संधागार कहलाता था और सभी निर्णय बहुमत से होते थे। सभा के अधिवेशन के लिए गणपूर्ति (कोरम) का विधान था और प्रस्ताव के पक्ष व विपक्ष में मत गिनकर फैसला होता था। गण सभा न्यायिक कार्य भी करती थी। न्याय प्रक्रिया विनिच्छय महामात्त से राजा तक सात सोपानों से गुजरती थी जो इस सिद्धान्त पर आधारित थी कि 'भले ही सौ दोषी छूट जाएं परन्तु एक निर्दोष को सजा नहीं मिलनी चाहिए।'

महात्मा बुद्ध ने वज्जि-संघ की शक्ति का मूल 'अपरिनिहाय धम्म' के पालन में निहित बताया था जिसमें संघ सभा में पूर्ण उपस्थित, समय पर अधिवेशन एवं संघ के कर्तव्य कर्म करना, संघ के स्वीकृत तथ्यों के अनुसार ही कार्य करना, नेताओं का सम्मान एवं आदेशों का पालन करना, धार्मिक कृत्यों का सम्पादन करना, धार्मिक अहितों का सम्मान करना और वृद्धों का सम्मान करना व कुल की स्त्रियों का अपहरण न करना आदि सात बातें थीं।

कालान्तर में गणतन्त्र कुलीन-तन्त्र में परिणत हो गए जिनमें शासक वर्ग एक ही कुल या एक ही वर्ग का होता था। फलतः गणतन्त्र आपसी फूट का शिकार हुए एवं उनकी शक्ति का जनाधार घटा जबकि राजतंत्रों के शासक वर्ग में अनेक वर्गों के लोग शामिल थे। अतः उनकी शक्ति बढ़ी। ऐसे में मगध विभिन्न योग्य राज्यों के नेतृत्व में एक विशाल साम्राज्य का केन्द्र बन कर उभरा।

इस मौर्य पूर्व काल का महत्व उत्तर भारत के विशाल क्षेत्रीय राज्यों द्वारा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के अनुकूल सैन्य, राजवित्तीय एवं न्यायिक प्रशासनिक व्यवस्थाओं को विकसित करने की उनकी सफलता में अंतर्निहित है जिनकी पीठ पर विशाल मौर्य साम्राज्य का उदय हुआ।

कौटिल्य प्रणीत मौर्य शासन प्रणाली

सम्पूर्ण प्राचीन विश्व में मौर्य साम्राज्य विशालतम साम्राज्य था जिसने पहली बार एक नए प्रकार की शासन व्यवस्था अर्थात् केन्द्रीभूत शासन व्यवस्था की शुरुआत की जो अशोक के शासनकाल में 'पितृवत् निरंकुश तन्त्र' में परिवर्तित हो गई। राजा का जीवन एवं दिनचर्या बड़ी श्रम-साध्य होती थी तथा वह अपनी प्रजा के कल्याण हेतु सदैव तत्पर रहता था।

मौर्य शासन व्यवस्था एक नौकरशाही प्रशासन तन्त्र था जिसमें पर्यवेक्षण और निरीक्षण की एक सुनियोजित प्रणाली थी। सामान्य प्रशासनिक तन्त्र की रचना निम्नांकित तत्वों से मिलकर हुई थी: राजा, प्रान्त प्रमुख एवं राज्यपाल, मंत्री, विभाग, प्रमुख, अधीनस्थ नागरिक सेवा तथा ग्रामीण प्रशासन के प्रभारी अधिकारी।

मंत्रिपरिषद् राजा की सहायता करती थी जिसमें पुरोहित, सेनापति, युवराज और कुछ अन्य मंत्री शामिल होते थे। इस काल के प्रामाणिक ग्रन्थ कौटिल्य के अर्थशास्त्र में

मंत्री के गुणों का सूची दी गई है जिसमें उनके कुलीन, संस्कारवान, सत्यनिष्ठावान और बुद्धिमान होने पर बल दिया गया है।

चाणक्य ने अर्थशास्त्र के अध्यक्ष प्रवर (खण्ड दो) में केन्द्रीय प्रशासन व्यवस्था का उल्लेख किया है जिसमें देश की सामाजिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक आवश्यकताओं के विभिन्न पक्षों का ध्यान रखते हुए एक व्यापक वैविध्यपूर्ण एवं बहुआयामी अधिकारी तंत्र की परिकल्पना की गई है।

मौर्यकालीन नागरिक सेवाओं में विभिन्न श्रेणियों और वेतनमान प्राप्त करने वाले प्रत्येक श्रेणी के अधिकारी सम्बद्ध थे। केन्द्रीय प्रशासन एक कुशल सचिवालय द्वारा संचालित किया जाता था जो विभिन्न विभागों में विभक्त था। प्रत्येक विभाग का प्रमुख एक अध्यक्ष या अधीक्षक होता था। कौटिल्य ने 32 विभागों एवं उनके अध्यक्षों का उल्लेख किया है जिनमें से अधिकांश का विवरण यूनानी स्रोतों में भी मिलता है।

राज्य की सुरक्षा, शान्ति व्यवस्था तथा राजस्व संग्रहण जैसे नियामकीय कार्यों को साधन-मात्र मानते हुए राज्य का मुख्य उद्देश्य जनता का सर्वतोमुखी कल्याण था। राजा अपनी प्रजा के साथ पितृवत व्यवहार करता था इसलिए वह विभिन्न सार्वजनिक कल्याण योजनाएं कार्यान्वित करता था। महाविद्यालयों और विद्यालयों, मन्दिरों और अन्य धार्मिक भवनों, पुल और बांध, बाजार-स्थलों और व्यापारिक केन्द्रों, विश्राम-स्थलों, शिक्षा-गृहों आदि का निर्माण राज्य द्वारा होता था।

'सड़क विभाग,' राष्ट्रीय राजमार्गों तथा अन्य महत्वपूर्ण सड़कों का निर्माण मरम्मत तथा रख-रखाव करता था जिनके किनारों पर वृक्ष लगाए जाते थे तथा कुएं आदि खोदे जाते थे। उप-मार्गों, मोड़-स्थलों और दूरियों को निर्दिष्ट करने के लिए मील पत्तर तथा नामपट्ट लगाए जाते थे। प्रमुख स्थानों पर धर्मशालाएं तथा सराएं भी बनाई जाती थीं। मनुष्य एवं पशुओं के लिए पेयजल सुविधा की व्यवस्था तथा सिंचाई हेतु कुआँ, नहरों, जलाशयों, झीलों तथा अन्य जल स्रोतों का निर्माण एवं रख-रखाव राज्य करता था। गुजरात में गिरनार के समीप प्रसिद्ध 'सुदर्शन झील' का निर्माण चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रान्तीय राज्यपाल पुष्यगुप्त द्वारा किया गया था और अशोक के समय के राज्यपाल तुपास्फ द्वारा इस झील में से सहायक नहरें निकाली गई थीं। सभी महत्वपूर्ण स्थानों पर व्यक्तियों एवं पशुओं के लिए चिकित्सालय खोले गये थे। उपचार सार्वजनिक रूप से शुल्क-मुक्त था। विश्व में अपनी तरह का पहला दृष्टान्त तत्कालीन जनगणना का एक स्थायी विभाग था जो जन्म-मृत्यु का पंजीकरण करता था।

मौर्य-शासन स्वयं ही एक व्यापक औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रतिष्ठान था। राजकीय प्रतिष्ठानों और निजी उद्यमों के बीच सम्बन्धों का विनियमन एक नाजुक कार्य था जिसे

मौर्य प्रशासन में सफलतापूर्वक सम्पन्न किया गया। बिक्री सम्बन्धी अनुज्ञप्ति पत्र जारी किये जाते थे। वाणिज्य अधीक्षक थोक भाव निर्धारित करता था। मिलावट के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था थी। तोल और माप पर भी पूर्ण राजकीय नियंत्रण था। राज्य व्यापारियों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान करता था और माल की चोरी या लूट हो जाने पर क्षतिपूर्ति भी करता था। दस्तकारों और शिल्पकारों को राज्य द्वारा विशेष संरक्षण दिया जाता था।

उस समय देश में प्रचलित कानून और व्यवस्था की सामान्य स्थिति बहुत अच्छी थी तथा कठोर दण्ड संहिता द्वारा इसका अनुरक्षण होता था। 'प्रादेशिक' प्रमुख पुलिस अधिकारी था जो अपराधों की यथोचित जांच-पड़ताल करता था।

राजा सर्वोच्च न्यायाधीश था। नगरों और गांवों में विशेष न्यायालय होते थे जिनकी अध्यक्षता प्रादेशिकों, महामात्रों तथा राजुकों द्वारा की जाती थी। न्यायालय दो प्रकार के होते थे—'धर्मस्थेय' जिसमें दीवानी मामलों की सुनवाई होती थी, और 'कण्टकशोधन' जिसमें अपराधिक स्वरूप के प्रकरणों का निर्णय किया जाता था। दण्ड व्यवस्था कठोर थी। कैदियों एवं कारगर अधीक्षकों के लिए व्यापक नियम कानून थे।

साम्राज्य विभिन्न प्रान्तों एवं प्रान्त जिलों में विभक्त थे। प्रत्येक जिले या जनपद में अधिकारियों का एक समूह कार्यरत था जिसमें तीन मुख्य अधिकारीगण थे—प्रादेशिक, राजुक तथा युक्त। प्रादेशिक को प्रति पांच वर्ष में प्रशासन के निरीक्षणार्थ क्षेत्र का दौरा करना होता था। ग्राम तथा जनपद के बीच दस ग्रामों के समूह की इकाई माध्यमिक स्तर बनाती थी जिसके महत्वपूर्ण अधिकारी गोप और स्थानिक थे। साम्राज्य में अनेक नगर थे जिनका प्रशासन एक परिषद् द्वारा किया जाता था। मेगास्थनीज ने पाटलिपुत्र की तीस सदस्यों वाली नगर परिषद् व उसकी छः समितियों के कार्यों का विस्तृत विवेचन किया है। तक्षशिला जैसे कुछ नगर स्वायत्त शासित थे।

गुप्त कालीन प्रशासन

केन्द्रीय साम्राज्य के प्रशासन में स्थानीय लोकतांत्रिक तत्वों के अधिकाधिक समावेश की प्रक्रिया 'गुप्तकाल' में चरमोत्कर्ष पर दिखाई देती है। इस समय अनेक 'नागरिक संस्थाएं' भी प्रशासन में सहभागी बनती दिखाई देती हैं। गुप्त राजाओं की तुलना प्रायः यम, वरुण, इन्द्र, कुबेर आदि देवताओं से की गई तो प्रजा के संरक्षण तथा सुरक्षा-पोषण सम्बन्धी कार्यों के लिए उनकी तुलना विष्णु से की गई। ऐसा उनमें नैतिक कर्तव्य-बोध आरोपित करने हेतु था अन्यथा गुप्त राजा भी निरंकुश नहीं थे। धर्म या विधि के मुख्य संरक्षक तथा व्याख्याता के रूप में ब्राह्मणों का राजसी शक्ति पर बहुत नियंत्रण रहता था। राजा को श्रेणी व निगमों के नियमों को भी मान्यता देनी पड़ती थी।

राजा प्रशासनिक कार्यों में मदद देने के लिए मंत्रियों की नियुक्ति करना था जिन्हें कामदक ने राजा के आंख-कान बताया है। स्मृतियों में अमात्यों या मंत्रियों के आवश्यक

गुण बताए गए हैं। ये राजसभा के सदस्य थे जिसमें जन-प्रतिनिधियों का भी समावेश होता था जो राज्य के महत्वपूर्ण विषयों पर विचार-विमर्श कर निर्णय करते थे।

‘कुमारामात्य’ एक ऐसा प्रमुख संवर्ग था जिसमें गुप्त राजाओं के अधीन उच्चाधिकारियों की नियुक्ति होती थी। यह एक विशिष्ट प्रकार का पद था जो वर्तमान आई.ए.एस. अधिकारियों के समकक्ष था। ‘कुमारामात्यधिकरण’ केन्द्रीय सचिवालय की भांति था जहाँ से केन्द्रीय आदेश अन्य विभागों एवं प्रान्तों में भेजे जाते थे।

‘संधिविग्रहक’ (युद्ध और शांति मंत्री) के पद का पहली बार उल्लेख समुद्रगुप्त के शासन में हुआ। ‘महाबलाधियुक्त’ प्रधान सेनापति था तो ‘महाभाण्डागारिक’ रसद विभाग का सर्वोच्च पदाधिकारी था।

गुप्तकाल में एक सुव्यवस्थित प्रान्तीय तथा स्थानीय प्रशासन का विकास हुआ जिसकी प्रमुख विशेषता थी-सत्ता का विकेन्द्रीकरण और स्थानीय स्वायत्त शासन।

प्रान्तों को ‘देश’ या ‘भुक्ति’ कहा जाता था। प्रान्त-पति के कार्यों में शांति व्यवस्था तथा राजस्व-संग्रहण के अलावा नहर बांध, सड़कें, चिकित्सालय बनवाना आदि जनकल्याणकारी कार्य भी थे। स्कंदगुप्त के सौराष्ट्र प्रान्त के गोप्ता पर्णदत्त ने सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार करवाया था। गुप्तकालीन प्रान्त अनेक विषयों का जिलों में विभक्त थे। कुमारामत्य या विषयपति इसके प्रशासन का प्रमुख था जिसे प्रशासनिक कार्यों में सहयोग देने हेतु एक ‘विषय-परिषद्’ होती थी। इसमें नगर श्रेष्ठि, सार्थवाह, प्रथम कुलिक, प्रथम कायस्थ आदि सदस्य होते थे। इस प्रकार जिला प्रशासन में भी जन-सहभागिता रहती थी। कुछ अन्य उच्च पदाधिकारी थे यथा भाण्डागारिधिकृत, ध्रुवाधिकरण, अग्रहारिक, शौलिकक, गौल्मिक आदि।

नगरों का प्रशासन ‘पुरवाल’ नामक अधिकारी के पास होता था। नगर प्रशासन से प्रमुख स्थानीय तत्व भी जुड़े होते थे जो दस्तकारों तथा व्यापारियों की श्रेणियों से जुड़े थे। नगरों में दण्डाधिकारी का कार्य ‘विनयास्थतिस्थापक’ नामक अधिकारी द्वारा किया जाता था। ‘चौरोद्वरणिक’ एक अन्य अधिकारी था जिसे चौकीदारी का कार्य सौंपा जाता था।

गुप्त सम्राटों ने साम्राज्य के विभिन्न भागों में औद्योगिक तथा वाणिज्यिक बस्तियों के विकास के लिए रियायतों द्वारा कई श्रेणियों को संरक्षण प्रदान कर कई विशेष प्रयत्न किये थे। गुप्तकाल में करों का भार बहुत कम था और किसी आकस्मिक कर का भी उल्लेख नहीं है। कृषि का अभूतपूर्व विस्तार, समृद्ध व्यापार-वाणिज्य एवं स्वर्ण सिक्कों की प्रचुरता तत्कालीन सुख-समृद्धि का आधार थी।

प्रशासन अत्यधिक दक्ष एवं भ्रष्टाचार मुक्त था। लोग नैतिक प्रवृत्ति के थे। फाह्यान यह देख आश्चर्य चकित था कि चोरी, डकैती जैसे अपराध देश में नहीं के समान थे और

लोग घरों में ताले भी नहीं लगाते थे। यह भय एवं अभाव मुक्त समाज का चित्रण है।

ऐसा इसलिए सम्भव था कि प्रशासन एकतरफा कार्य नहीं करता था अपितु उसमें जनसहभागिता सभी स्तरों पर भी। विभिन्न 'गैर सरकारी संगठन एवं नागरिक संस्थाएं' सभी क्षेत्रों में कार्यरत और प्रशासनिक तंत्र से जुड़कर उसे एक लोकतांत्रिक स्वरूप देती थीं।

इस प्रकार भारतीय प्रशासनिक परम्परा के उक्त सिंहावलोकन से स्पष्ट है कि भारतीय प्रशासन सदैव से लोकतांत्रिक एवं जनसहभागिता युक्त विभिन्न जनकल्याणकारी गतिविधियाँ में संलग्न रहा है। 'जीवन्त प्रशासन' के ध्वजवाहक प्रशासक सदैव लोकहित को साध्य मानने वाली दृष्टि से युक्त रहे हैं।

वर्तमान भारतीय प्रशासकों को इसी भारतीय प्रशासनिक परम्परा से प्रेरणा लेकर अपने कार्यक्षेत्र में जनसहभागिता बढ़ाते हुए लोकहित की दृष्टि में रखते हुए नवीन कार्यक्रम तथा कार्यविधियाँ अपनाकर नवाचार का परिचय देना चाहिए। अपने कार्य को ईश्वरीय कार्य मानते हुए अपने विवेकाधिकार को सदैव अधिकतम जनहित की कसौटी पर कस कर आचरण करना चाहिए।

५

विश्व का सर्वश्रेष्ठ प्रजातन्त्र 'स्विटजरलैण्ड'

विश्व के समस्त राष्ट्रों में स्विटजरलैण्ड की प्रजातन्त्र सरकार सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है जहाँ के राष्ट्रपति, मन्त्रीगण, स्विटजरलैण्ड के नगरों में अपने निजी कार्यों के लिए शासकीय वाहनों का उपयोग नहीं करते तथा आम नागरिकों की तरह बसों और टैक्सियों से यात्रा करते हैं। यहाँ तक यह देखा गया है कि बस में यात्रा करते समय यदि बैठने की सीट खाली न मिले, तो वहाँ के राष्ट्रपति खड़े-खड़े यात्रा करते हैं तथा उन्हें पहचानने वाले यात्री अपनी सीट पर बैठे-बैठे उनसे नमस्ते तो करते हैं परन्तु अपनी सीट उनके लिए न तो खाली करते हैं और न राष्ट्रपति खाली करने देते हैं। किसी मन्त्री या राष्ट्रपति को किसी प्रकार के सुरक्षा-सैनिकों की न तो आवश्यकता होती है और न उनके आने-जाने के समय मार्गों पर यातायात रोका जाता है। वहाँ का प्रजातंत्र विश्व का सर्वश्रेष्ठ प्रजातन्त्र माना गया है।

A Brother Officer's Advice

— Gyanendra Badgaiyan

If you run into an IAS officer, who has been in service, for say 15 years, here is what you can do for him.

First of all, help him understand this: fifteen years on the job and there is still a lot to learn: learn not just what remains unlearned but also what needs to be unlearned. Encourage him to express his views on the multitude of issues in Indian public discourse. Work with him to learn where his opinions come from. Reveal to him the invisible yet powerful influence of chance experiences, perceived self-interest and ideology, however inchoate. Help him experience the freedom that comes from divesting one's self from one's stated positions. And the gains that follow from understanding alternative view-points including those that are not friendly, even hostile.

Help him make sense of the disapproval that greets him often. Ask him to curb the tendency to dismiss it or join it. Tell him that some criticism might be unfair to him but not unfair otherwise. Counsel him to not let such criticism dampen his enthusiasm. Let him understand that some of it is born out of frustration and pain.

If he complains of being powerless, remind him of the enormous reach of the Indian state and his own pre-eminent position in it. Or, of the number of times he was able to get away with arrogant behaviour. If this does not help, suggest to him that perhaps he is too focused on the ones more powerful than him and to have forgotten those millions whose lives he has the power to change.

Ask what motivates him. He may talk about uninspiring bosses, especially the ones that kick up and kick down. He may mention the crushing weight of routine, endless meetings and the sheer boredom of being in a stifling environment. He will perhaps talk about the crippling effect of an unimaginative promotion policy, fear of inquiries, motivated or otherwise and a nontransparent handling of personnel matters. You

Contd. on Page 33

Enters The New Babu

□ Vijay Jung Thapa

Shed that Mai Baap Image-that's what recruits to the civil service are being told. This elite core of administrators is undergoing a serious phase of transition and role definition.

If you take a quick poll among retired IAS, IPS and IFS officers and you are likely to come up with a more indignant contrarian view of how the quality of civil service probationers is being diluted because of a marked social alterations in the kind of people coming in. But that Isn't all. Fact is, today the elite core of administrators in this country, the civil service-what was once called the steel frame of India-is going through a serious phase of transition in its identity and role definition. The most pressing reasons are:-

- 1 The profession doesn't hold the same kind of strong primal attraction, with the more talented students either preferring to go abroad or opting for the more lucrative private cadres.
- 1 Political interference in the services has taken a toll leading to a growing feeling of cynicism in the cadres.
- 1 There is today a discernible drop out rate-something unheard of earlier, with the abler administrators opting for better jobs elsewhere.
- 1 The credibility of the civil service is at an all-time low.

A consensus paper on "civil service reforms" drawn up by the LBSNAA (Lal Bahadur Shastri National Academy of Administration) puts it more candidly: "Whatever went wrong in the four decades of planned development is attributed to it (the civil service) and whatever worked was in spite of it. Civil Service baiting today has acquired an acrimony as never before and it is condemned not only from without but also from within."

There is no doubt that the social composition of civil service officers is different now and far more representative in some ways. The earlier urban bias in selection is now steadily declining. Similarly, there is also a change in the campuses where officers are coming from. Even as late as 1980, the main contributors to the civil services were St. Stephens College and Hindu College in Delhi, Presidency College in Calcutta, Muir Hostel in Allahabad, Loyola, Madras Christian and Presidency Colleges in Chennai and Ravenshaw College in Cuttack. Today, the largest contingent comes from IIT Kanpur.

How has this really affected the service? Typically, there are two strong opposing views. The more critical view is that the civil service meant to attract generalists with a liberal arts background and a commitment to public service-is now being flooded with people whose technical training has insulated them from social and political realities. Also, while greater rural representation is good idea, what is actually happening is that a majority of probationers seem to come from a handful of backward states-Uttar Pradesh and Bihar are good examples where due to the lack of a flourishing private sector, the civil service is still considered the "mother of all jobs". Adds a senior bureaucrat: "A lot of these probationers come from feudal backgrounds and are only interested in power and money. They have set ideas that are conservative, parochial, casteist and communal."

But the other view, represented by a wider cross-section of bureaucrats is that the changing social profile of the new recruits is better for the civil service because it gives it a more pan-Indian character. "The young recruits I come across are well informed about issues than we ever were," says Wajahat Habibullah, director of LBSNAA. This view strongly denies any connection between the decline of the service and the social background of the recruits. "Look at how the bureaucracy is viewed by the public today. They are seen as corrupt, communal and parochial... and then ask yourselves who has been running the bureaucracy till very recently, isn't people from the same elite, liberal, upper-class families?" asks a former cabinet secretary. Besides, points out senior bureaucrats, if money is the only consideration, in today's scenario a person who has the intellectual capability to get through the civil services examination has a lot of other lucrative job opportunities. "The majority of those who get into the services today make a conscious choice," points out Tarun Sikdar, deputy director at the LBSNAA.

But the alteration in social composition isn't a major problem, role

definition-or the process of evolution to churn out a new model bureaucrat for these changing times is getting to be one. The LBSNAA itself is a good example of this churning. Once regarded as just a finishing school where recruits were groomed in table manners, today the academy is gearing itself to become a think tank for the civil service. One of its main concerns is defining the role of an officer seen through two main paradigms of change:

The irreversibility of reforms and the fact that the government now broadly needs to confine itself to the sector, leaving the rest to market forces.

Decentralisation, or the advent of a strong panchayati raj system at the local level takes away a lot of responsibilities earlier vested with the bureaucracy.

"Looking at it through these two paradigms, what we tell the new recruits is the mai-baap days of the bureaucracy are over. Today you are more like a facilitator," explains B.S. Baswan, former Director of LBSNAA and Secretary, Minorities Commission. The new bureaucrat is seen as a "knowledge Manager"- a modern-day troubleshooter who takes decisions after consulting every interest group, not autocratically as is being done today.

Moreover, the recruits are told to start specialising in the micromanagement level (read district). So once they reach the macro management level (policy drafting) they know what streams they should follow in the hierarchy. "No more should a defence secretary become an agriculture secretary, or a finance secretary become an aviation secretary. The generalist is no longer a viable concept," adds Sanjeev Chopra, deputy director and faculty member at the LBSNAA.

But both Baswan and Chopra admit they are taking on a very powerful mindset, one that is steeped in tradition dating back to Raj. LBSNAA faculty say most recruits accept this change in attitude while in training, but change their views once they get a district posting. It is called the "White car, red light" syndrome-once they've tasted power, it isn't easy to tell them they have to give it all up just because some "Ivory tower idealists" in Mussoorie say so.

And the thinking today is that this Mai Baap mindset has to be weeded out right in the beginning. It is at this point where the Union Public Service Commission (UPSC), the organisation that selects the civil service probationers, plays a vital role. A chairman of UPSC says

"There is a realisation that at this juncture we need candidates with the necessary intellectual and attitudinal calibre who can be facilitators, disseminators of information and agents of change." The UPSC set up a nine-member committee headed by a Planning Commission member to review the civil service examination process. Experts in the UPSC say they are aware of the widespread criticism of the examination process. The complaints are that only students with rote ability clear the entrance examination, and the age limit-30 in the general category, 33 for OBCs and 35 for SCs/STs-is too high, bringing in people with firm mindsets that are difficult to change. Typically, the student who clears the UPSC examination is one who has, after college, opted out of the mainstream, is taking up coaching classes, and keeps trying for years on end until one day he actually does get in.

But in the end, all these efforts to try and define a "new babu" will come to nothing if it isn't taken seriously by the existing bureaucracy itself. As of now, most officers in the service look at this new trend with scepticism-and often ridicule the probationers and their new fangled ideas during their first district posting. Says one such probationer: "The seniors try and wear you down. It's a fight from the beginning." Who wins this battle will eventually decide the fate of the civil service.

५

From Page 29

ask if he is himself doing enough about these very things to keep high the motivation of those working for him. Finally, take him, during night, to the India that sleeps on pavements and, during days, to the India that sends her children to beg. Ask him; Is working for these people not motivation enough?

Draw upon the reservoir of Indian public intellectuals and others who, if credibly approached, will do this for the love of their country. This is a fairly large and demanding agenda. Do what best you can.

५

The author is an IAS officer

Mere Administrative Reforms Are Not Sufficient

□ O.P. Saxena

India is the largest democratic country in the world with potential to develop into a super-power. The country has made tremendous progress in various spheres, be it, communication, information technology, transport, space research or medical service technology. The latest addition of its achievements is the launching of indigenously built nuclear powered sub-marine equipped with ballistic missiles INS Arihant-whereby India became the sixth nation besides US, UK, France, Russia and China who can build and operate Nuclear Submarines. At the same time there are spheres including socio-economic where the performance and outcome is quite dismal inspite of various administrative reforms and other measures undertaken by the government from time of time. What could be the reason?

After Independence India adopted democracy as the way of good governance. In spite of several deficiencies in democracy it is still the best governing system developed so far. It is of course, true that in democracy things move slowly. An objective assessment of the administrative reforms undertaken so far is imperative in the present scenario.

During the British rule the backbone of the administration used to be Indian Civil Service (ICS), the officers who were known for their integrity, devotion to duty, honesty and were often called as steel frame of Indian Administration. The Indian civil service officers used to be members of the Council of Administrators headed by the Governor-General and besides acting as ministers, had also been entrusted with the task of implementing the policy. Post Independence, the government felt the need of an administrative system which may be in tune with the changing circumstances. The government's perception is well reflected in what Pt. Jawahar Lal Nehru said, "No new order can be built up in India so long as the spirit of ICS pervades our administration. It seems to me quite essential that ICS and similar Services must disappear." This is how the Indian Administrative Service came into existence, which is now considered the backbone of the Indian governmental system. The Indian Administrative Service comprises of IAS, IPS besides other civil services whose officers are intellectually bright, meritorious,

academically sound and well equipped to manage complex problems. The service system is well organised and considerably independent. The civil servants continue in the civil service for long periods and wield a great deal of influence as they act as a buffer between the political bosses and the masses of the country. There was a time when these officers were universally respected. Their honesty, integrity and devotion to duty was taken for granted. This is no longer the case. Degeneration has crept into this cadre although the service continues to attract best talent. Corruption has entered into the service. Take the case of Mr. A.P. Singh, the former chief secretary of U.P. and late Mr. Gautam, the then District Magistrate of Patna, Bihar who came into prominence by having his photo on the cover page of prestigious news magazine 'News Week'. These and such other unscrupulous persons have tarnished the image of the civil services by indulging in corrupt practices. What could be the reason behind this unfortunate degeneration in the civil services? Is it simply the greed for affluence, lack of accountability, dilution of merit, lack of moral values, political system in vogue of which they are part and parcel and corrupt politicians behind this degeneration?

The dilution of the original concept of meritocracy has crept in over a period of time starting with the introduction of reservations for particular sections of the society. The political compulsions of extending the period of reservation from time to time has no doubt impacted the services adversely. The period of emergency from 1975 to 1977, the darkest period in the history of country's democracy, brought forth concept of committed bureaucracy and caused immense damage to the governing system. The value system crumbled further in the decade of 1980 and early 1990 when degeneration of political leadership created an ethos of shameless corruption.

Corruption has become more or less a way of life and constitutes the most formidable obstacle to India's emergence as an economic super power. One cannot expect bureaucracy to be honest if the political leadership, which wields the levers of power is corrupt. The corrupt politician started working hand in glove with the corrupt civil servants and the two blatantly threw political integrity and service honesty completely overboard. The real shame, surely, is what politicians do in open. Corruption is no longer a shady business. High level of corruption and absence of accountability are the major causes of all the ills that afflict the administration.

Civil Services reforms have become a buzzword of today. The central and state governments have since Independence set up Administrative Reforms Commissions with a view to make the government efficient and effective by rationalising different laws, manuals, rules and methods of working. Computerization of office work, procedures and records, though often opposed by the staff have gone a

longway in provding service to the people and minimising the chance of corrupt practices. The major thrust of governments in nineties was to envolve a policy framework in the major areas affecting the total economy of the country. Futher, economic reforms were also introduced to provide a suitable evironment for development. The several Admini- strative Rerform Commissions recomended various reforms which led to the creation of new departments, new administrative organisations and institutions.13th central ARC in its report submitted to the government in May this year has submitted proposals for bringing down the existing ministries from 55 to 20-25 without reducing the number of ministers. The benefit of such arrangement is, the ARC said, that it would lead to enhanced coordination of national issues and at the same time meet the requirment of providing adeqate ministrial representation. Many of these reforms could not be undertaken because of lack of political consensus. However administrative reforms are an on going process.

The governments persuing political agenda as distinct from providing good governace are causing immense harm. In Uttar Pradesh things have come to such a pass that officers are seeking judicial intervention for their promotions etc because the top bureacracy in flagrant disregard of rules and regulations is blindly follwing the political agenda as set at by the political bosses in power. The states have shown little regard to the Supreme Court by not enforcing reforms in the police force. They fear that such reforms would loosen the hold of the government on the police force which is more often used as a tool to further the interest of political party in power. Is it correct to correlate the transfer and posting of inspectors of force on the camplaints of MLA's of the political party in power? If the trend continues then the degeration may reach a deplorable stage.

The need of the hour is to make the civil services an effective instrument of good governace by isolating it from political influences. It is imperative to raise the level of accontabilty so that the performance of the civil servants is objectvely analysed to decide their future promotions and postings. Will the government implement the suggestions in true spirt? If not then the observation of the Supreme Court. "The whole government machinery is corrupt. We lay down law, but who will implement it? It has to be done by the clerks. The secrataries and joint secretrairies have no guts to go against the clerks. The law is there, the statute is there, but the governments have become non functional. General perception regarding MCD bogus muster rolls scam is that a scam of this magnitude can not exist without the connivance and active participation of officers, union and politicians and many more such scams would continue to bleed the nation."

ॐ

D-305 Pragati Vihar Hostel, Lodhi Road, New Delhi

Role Of Administration for A Resurgent India

— α Somdatta Mohan

The topic is thought provoking and raises questions to ponder over such as: Is india really resurgent? If so in what direction? Is India really making strides in (a) Economy and industry (b) Science and technology (c) World peace (d) Tradition, Clulture and Civilization (e) What qualities, calibre, rights, powers and authority, the Indian Administration should acquire (f) what duties should it be prepared to perform to make contribution to the indian resurgence? (g) What role should the administration play to energize the Indian resurgence?

Let us take up the above questions one by one:-

(1) Yes, India is a resurgent nation. Recently Bill Gates, the richest person in the world euligized India in glorious terms. He says that India possesses the most brilliant talents and calibre in the world. Why? Perhaps Indians in large number are manning his software kingdom. But does it denote India's resurgence, despite its faults and follies, despite corruption rampant all over not only in the administration but also in the whole social fabric and the polity, despite the moral fibre crumbling, because even after 62 years of India's Independence, we do not possess the character building education system which is still reeling under the Macaulay's influence.

Mahatma Gandhi had said-"If the English stay here, but their culture departs. I would say that India has achieved Self Rule. But if they leave India and their culture stays to dominate us I would say we have not attained Freedom". If we apply Mahatma Gandhi's criteria, India is suffering from mental slavery. which we had never suffered during the ruthless, cruel and tortrous rule of the foreigners for about 1200 years.

However in ceratin aspects India can claim to be really resurgent:

(a) **ECONOMY.** India's economy has almost attained the status of a developed economy.

(b) **SCIENCE AND TECHNOLOGHY:** NDA government immediately after taking over the reins of the government carried out a nuclear test to acquire the nuclear power status at the risk of all threats of the big powers of the world to impose sanctions on India. The purpose

was to attain the nuclear power status for safeguarding the security of India and not for aggrandizement. BECAUSE NON-AGGRESSION IS THE ESSENCE OF **Indian culture**. Our scientists are winning laurels in various fields of science.

Infrastructure for Industrial growth is being developed at a great speed. Private companies have been assigned the job of constructing the national highways allowing them to meet their expenses by charging the toll tax, rather than burdening the national exchequer.

Mahatma Gandhi had said-"If the English stay here, but their culture departs, I would say that India has achieved self Rule. But if they leave India and their culture stays to dominate us, I would say we have not attained freedom.

Project for constructing pucca roads to link the 5 lac villages with the national highways, would energize the village economy that accommodates almost 70% population.

WORLD PEACE: India has not agreed to sign the discriminating non-proliferation treaty despite pressure from the super powers. Actually that treaty allowed some nations to carry on increasing their nuclear weapons while putting a ban on the other nations. This daring stand on the part of India is working in the right direction.

India's cultural background is a great asset to help bring her resurgence. China's traveller Huen Sang and Fahian had said in the ancient past that India was a highly affluent country and the moral fabric of India was so rich and strong that the people did not lock their houses and there were no crimes such as thefts and dacoities.

The Administration comprises the political leadership, the bureaucracy, and the judiciary. It is impossible to conceive of a just and ordered society without a trained bureaucracy. Political Executive as well as the judiciary do depend upon the bureaucracy for framing rules and regulations. for administering the law and for managing and supervising as well as for organising the social, legal and political system.

All the three sectors of Administration have to be upright, sincere, and honest. They have to be imbued with the spirit of selfless service of the people. Their rights, powers and authority should be confined to deliver justice to the people. In common parlance they claim to be public servants. They have to prove themselves true to this nomenclature, by blazing a trail that leads to the glorious resurgence of India. **Let the vibrant Administration cast aside the sense of being rulers. Let them be public servants.**

१

The author is a retired chief Interpreter in Lok Sabha

DHARMA-ITS IMPORTANCE IN GOVERNANCE

————— ❧ **Justice K.P. Radhakrishna Menon**

Dharma is the foremost concept of the four Purusarhas, Dharma, Artha, Kama and Moksa, reflecting all the possible human urges and aspirations, formulated by Vedanta. Purusartha means. "Purusena arthyate iti Purusartha". Its English rendering is: 'That which is sought after by a human being'.

To accomplish upliftment of the society and thereby of the nation, Dharma commands that the citizens shall obey both, the man made laws and moral laws. Dharma, in the context, has two dimensions, namely, legal and spiritual. It shall, however, be remembered that the legal dimension cannot become effective unless there is moral dimension. When the moral awareness is lacking, there will be tendency to break or bend the law for one's own benefit. To restrain this tendency, the state may enact more laws, but this will be of no avail, because man cannot be made moral by an Act of Parliament.

Modern biologists like Huxley and others, view that human beings without this value system will continue to manifest the characteristics of human beings during pre-human period. But the biologists had never ventured to find out its source. They are, nonetheless, certain in their conviction that human evolution has ceased to be organic and has become psychosocial. It is Vedanta alone that gives us the source of all values; It is the one Atman, the divine reality ever present in all, from whom the universe has manifested in the human beings.

Maharshi Aurobindo and Mahatma Gandhi, the father of the nation, could foresee that Independent India will give up the moral dimension of the Dharma concept and introduce the western type of administration engulfed by consumeristic civilisation, the arch enemy of Dharma.

Aurobindo said that democracy to be successful in India must be rooted in Dharma. Mahatma said: "By political Independence, I do not mean an imitation of the British House of Commons or the Soviet rule of

Russia or the Fascist rule of Italy or the Nazi rule of Germany. They have systems suited to their genius. We must have ours suited to our genius."

"Mahatma Gandhi said, "I have described it as Ram Raj. that is, sovereignty of the people based on pure moral authority. Every community would be on a par with every other community". That is why Mahatma said that the true source of right is duty.

Administration in India prior to the British rule was controlled and guided by Dharma. Citizens used to obey man made laws. Not only that, "Citizens use to obey the high standards of decency which are not enforced by law but are the hallmark of a truly civilised and mature democracy. The various facets of Dharma constitute the genius of India. The rulers and the ruled practised this Dharmic Philosophy in their dealings in society.

The political leaders-turned administrators framed a constitution, not based on the genius of Bharat but the genius of the Western countries. As if, he foresaw this dependence on western civilisation, Mahatma Gandhi while making comments on communism said, "Moreover they (Communists) seem to take their instructions from Russia, whom they regard as their spiritual home rather than India. I cannot countenance this dependence on an outside power".

Induction of Article 30 conferring special fundamental rights on minorities based on religion to establish and administer educational institutions of their choice, into the Constitution has smashed the Dharmic concept of unity in diversity and that every community is equal irrespective of caste and religion.

The byproducts of the administration bereft of the science of values, are communalism and corruption. Even scriptures of all religions have condemned the evils of bribes. The Bible says. "A wicked man accepts bribe behind the back to prevent the ways of justice". Prophet Micka says, "The Prince asks for gifts, the judge seeks bribes and the great man utters his evil desire so they scheme together".

Rig Veda describes people who take bribe as thieves. Religious fundamentalism and communalism have completely disrupted social cohesion and emotional integration based on the basic moral principle of equality for all.

The cesspool of degeneration to which the administration has fallen should be blotted out The simple answer is let the administration be rooted in Dharma. To introduce such a system, as our revered President Abdul Kalam said. "Three types of people are needed-Punya atma (virtuous people), Punya neta (virtuous leaders) and Punya adhikari

(virtuous officers)." This prescription sounds the great divine Gita message in which Sri Krishna exhorts humanity through Arjuna, "tasmat Yogi Bhav Arjuna". The quintessence of this message is that every administrator judge, teacher worker, nay, every citizen shall possess the characteristic of a Yogi. Action must be inspired by bhakti, that is, devotion, dedication, commitment; and it shall be studied by dhyana, that is, by meditation and guided by jnana. **Man must be a Raj Rishi, that is, he must be kingly outside and saintly within.**

Such people are scarce today. And, therefore, to save the nation from the cesspool of decadence, the one thing that should be done is to decommercialise both religion and education and train the new generation by giving an education, which helps them to learn both *Para* (spiritual) and *Apara* (Worldly) vidya (knowledge). Dealing with this aspect, The former President Abdul Kalam said:

"Our culture teaches to learn both *Para* (spiritual) and *Apara* (worldly) Vidya (knowledge). Therefore, together with knowledge of the *Apara*, one should learn the *Para* as well. If one learns this then *Apara*-worldly knowledge-vidya will become founded on dharma and spirituality".

Let us therefore, try to build a new nation, the citizens of which will work for the welfare of each other shedding the differences based on religion, caste, communalism and fundamentalism. Let our actions be based on the science of values, that is, Dharma. Let us work unitedly for the welfare of the nation. Let us be patriots. Let us not fight for any special rights other than the fights of the weaker section and Scheduled Castes and Scheduled Tribes so that we can extricate Mother India from the Dhritarashtra embrace of the quota rule, of appeasement adopted by unpatriotic politicians running the government to satisfy communalism and casteism, with a view to fill their vote banks to the brim. Believe in the service of the Nation.

In conclusion. I shall quote F. Max Mueller:

"If were to look over the whole world to find out the country most richly endowed with all the wealth, power and beauty that nature can bestow the very paradise on earth-I should point to India".

ॐ

**I have learned to seek my happiness by limiting my desires,
rather than attempting to satisfy them.**

-J.S. Hill

रैगिंग का भयावह चेहरा पश्चिमी सभ्यता का नायाब तोहफा

— v आर.के. श्रीवास्तव

रैगिंग एक विष बेल की भांति है जो शिक्षा जगत में अबाध गति से फैल रहा है। इसके परिणाम स्वरूप मानसिक एवं शारीरिक उत्पीड़न, आत्म हत्या एवं हत्या की घटनाएं बढ़ रही हैं। स्वयं राष्ट्रपति ने इस पर चिंता प्रकट की है एवं उच्चतम न्यायालय ने भी दिशा निर्देश जारी किये हैं। विद्वान लेखक ने इस विकृति का गहन विश्लेषण करते हुए इसे रोकने के उपाय भी सुझाए हैं।

रैगिंग का तात्पर्य ऐसे कार्य से है जो किसी विद्यार्थी को शारीरिक, मनोवैज्ञानिक रूप से चोट पहुँचाये या उसकी सम्भावना उत्पन्न करे अथवा उसे लज्जित होने के लिए मजबूर करे। अमेरिका, इंडोनेशिया एवं फिलीपीन में रैगिंग को हेज़िंग (Hazing) कहा जाता है। संस्कृत, हिन्दी अथवा अन्य भारतीय भाषाओं में रैगिंग का कोई समानार्थी या पर्यायवाची शब्द नहीं है। भारतीय समाज में न तो ऐसी घटनाएं हुईं और न ही उनकी कल्पना की गई। किसी भी भाषा में किसी शब्द विशेष की रचना तभी होती है जब समाज में घटित किसी घटना अथवा किसी भाव को अभिव्यक्त करने की आवश्यकता होती है।

भारतीय संस्कृति एवं समाज में अध्ययन अध्यापन के लिए गुरुकुल हुआ करते थे जिनमें गुरु शिष्य परम्परा का निर्वाह होता था। शिष्य गुरु का आदर करते थे एवं उनकी सभी आज्ञाओं का पालन करते थे तथा गुरु भी अपने शिष्य को अपने बेटे से भी अधिक स्नेह प्रदान करते थे। शिष्यों का परस्पर व्यवहार भाई-भाई जैसा था। ऐसे वातावरण में रैगिंग की भावना के अंकुरण की सम्भावना शून्य होती है।

मूल रूप में रैगिंग का उद्भव हेज़िंग से प्रारम्भ हुआ। इस शब्द का उपयोग प्राचीन अमेरिका में पालतू पशुओं के नियंत्रण के लिए किया जाता था। परवर्ती काल में नवांगतुक जिन्हे 'ग्रीनहार्न्स' कहा जाता था, की खिल्ली उड़ाने तथा अशिष्ट व्यवहार के द्वारा उनका उपहास करने को हेज़िंग कहा जाने लगा। ये हेज़र उन व्यवसायिक अमेरिकी खिलाड़ियों से प्रेरणा लेते हैं जिन्हें अपने प्रतिद्वन्दी को तड़पाने, अपमानित करने एवं क्रूरता से मारने व

कष्ट देने में आनन्द का अनुभव होता है। ऐसी अधिकांश घटनाओं का अमेरिकी क्रीड़ा लेखक खेल का अंग एवं हास्य विनोद का आधार मानते हैं जबकि ऐसे कृत्यों की निन्दा होनी चाहिये। अफ्रीकी, अमेरिकी व लतीनी समूह में योद्धाओं की मार व काट सहन करने की क्षमता की प्रशंसा की जाती है जबकि इससे किसी को कोई लाभ नहीं मिलता।

अमेरिका में हाई स्कूल के विद्यार्थियों में हेज़िंग आमतौर से प्रचलित है। यद्यपि स्कूलों में मार-पीट से प्रायः विद्यार्थी की मृत्यु नहीं होती तथापि उन्हें लात घूसे की मार सहन करनी पड़ती है। इतना ही नहीं उनका यौन उत्पीड़न भी किया जाता है जिसके परिणाम स्वरूप कभी-कभी हेज़र द्वारा पेन या झाड़ू की सींक टूंसने के कारण उनके गुप्तांग फट जाते हैं। इन सबके बावजूद कुछ अपवादों को छोड़कर, जिसमें दुर्घटनाओं के बाद जल्दी में की गई कोई कार्यवाही होती है, अमेरिका के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में हेज़िंग रोकने का कोई प्रयास नहीं किया जाता।

दुर्भाग्यवश अमेरिकी समाचार माध्यमों में हेज़िंग के सम्बन्ध में जागरूकता कभी अधिक नहीं रही, यद्यपि विगत 40 वर्षों में अमेरिकी कॉलेज के लड़कों में तथा कुछ मामलों में लड़कियों में हेज़िंग के कारण मृत्यु के मामले होते रहे हैं। सर्व प्रथम 1873 में कार्नेल विश्वविद्यालय में सेना प्रमुख के बेटे की मृत्यु हेज़िंग से हुई। 1970 से 2009 तक प्रत्येक वर्ष अमेरिका में कम से कम एक तथा कभी-कभी अधिक संख्या में हेज़िंग से मृत्यु हुई है। यह मृत्यु अधिकांश मामलों में पिटाई या अत्याधिक शराब पिलाये जाने के कारण होती है। किन्तु कभी-कभी अन्य कारणों जैसे आग से जलाकर, पानी में डुबाकर तथा अत्यधिक शराब पीने के बाद गाड़ी चलाकर टक्कर मारने से भी होती है।

रैगिंग एक पश्चिमी अवधारणा है। इसका उद्गम एवं विकास योरोपीय विश्वविद्यालय में हुआ जहां सीनियर छात्र फ्रेशर्स का हँसी-मजाक के माहौल में परिचय करते थे। धीरे-धीरे यह परम्परा पूरे विश्व व भारत में भी फैल गई। प्रारम्भ में इसका स्वरूप ठीक था। धीरे-धीरे यह विकृत होता गया व परिचय के नाम पर सीनियर छात्र गुंडागर्दी करने लगे। चिकित्सा, प्रबंधन व इंजीनियरिंग के संस्थानों में विशेष रूप से रैगिंग का स्वरूप अनैतिक व विकृत होता गया। इसका प्रमुख कारण सम्भवतः यह रहा है कि साधारण विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की तुलना में इन विशिष्ट संस्थानों के विद्यार्थियों की बुद्धि तेज होने के कारण अमेरिका एवं अन्य योरोपीय देशों में हेज़िंग व रैगिंग की जानकारी प्राप्त करने के बाद वे इसी की नकल करके अपने को अत्याधुनिक साबित करना चाहते हैं।

लगभग तीस वर्ष पहले रैगिंग केवल हॉस्टल में प्रवेश लेने वाले नये विद्यार्थियों के साथ होती थी। वह भी हँसी-मजाक करने, उन्हें मूर्ख बनाने व उनका उपहास करने तक सीमित थी जिसे सहन करना कठिन नहीं था। मारने-पीटने व चोट पहुँचाने की प्रथा नहीं थी। हॉस्टल में न रहने वाले विद्यार्थियों के साथ विश्वविद्यालय परिसर व उसके बाहर कोई रैगिंग नहीं होती थी। इधर दस-पंद्रह वर्षों से रैगिंग में हिंसा का समावेश हो गया है। सामान्य परिचय के साथ प्रारम्भ हुई यह प्रक्रिया रैगिंग के रूप तक पहुँचते-पहुँचते खतरनाक रूप

ले लेती है। रैगिंग के कारण नवांगतुक छात्रों को इतनी आत्मग्लानि एवं लज्जा महसूस होती है कि वे इसका जिदर अपने साथियों व अभिभावकों से नहीं कर पाते। कभी-कभी आत्मग्लानि के कारण वे आत्महत्या भी कर लेते हैं। कुछ मामलों में रैगिंग के शिकार छात्रों के अलावा अन्य व्यक्तियों की भी मृत्यु हुई है। सितम्बर 2006 में आंध्र प्रदेश में सी.ललिता ने रैगिंग के दौरान अपने बेटे के साथ किये गये यौन शोषण से दुखी होकर आत्म हत्या कर ली थी। अगस्त 2006 में मध्य प्रदेश में प्रथम वर्ष के एक छात्र ने रैगिंग से तंग आकर तीन सीनियर छात्रों की हत्या कर दी। किन्तु अधिकांश मामलों में भुक्त भोगी छात्रों की ही मृत्यु हुई है।

रैगिंग के लगभग सभी मामलों में नवांगतुक विद्यार्थियों को प्रताड़ित, अपमानित, लज्जित व उसे मृत्यु तक पहुँचाने के अनेकों तरीके अपनाये जाते हैं जिनका यदि विस्तार से वर्णन किया जाय तो एक भारी भरकम पुस्तक तैयार हो जाएगी। यहाँ पर केवल दो मामलों का कुछ विस्तार से विवेचन उन नारकीय परिदृश्यों का ज्ञान कराने के लिए पर्याप्त होगा जिनसे होकर विद्यार्थियों को गुजरना पड़ता है।

पहली घटना 4 अक्टूबर 2007 को नोयडा के अल्फा सेक्टर एक में हुई। नोयडा के ए.पी.जे. इंस्टीट्यूट के छात्र: सीनियर प्रथम वर्ष के एक छात्र प्रशान्त कुमार अग्रही को रैगिंग के लिए अपने निवास में ले गये। वहाँ पर उसकी पिटाई की व नंगा करके डांस करने के लिए कहा। उन दुराचारियों के आदेश का पालन करने से हिचकिचाने पर उन दुष्टों ने उसके ऊपर दुर्गन्धनाशक का स्प्रे करके सिगरेट लाइटर से उसके गुप्तांग को दागा। इससे भी वे संतुष्ट नहीं हुए व उससे एक सुसाइड नोट लिखवाकर उसे छत की मुडेर से उलटा लटका कर कहा कि तुम मृत्यु को पास से देखो।

दूसरा मामला हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा में आर.पी. मेडिकल कॉलेज का है जहाँ सीनियर्स ने शराब के नशे में धुत होकर 6-7 मार्च 2009 की रात को मेडिकल कॉलेज के छात्र अमन काचरू की रैगिंग के दौरान इतनी पिटाई की कि उसकी मृत्यु हो गई। इस घटना से पूरे देश में शोक की लहर दौड़ गई व रैगिंग की समस्या पर राष्ट्रीय स्तर पर बहस भी आरम्भ हो गई।

इसके बाद आंध्र प्रदेश के राजकीय एग्रीकल्चरल इंजीनियरिंग कॉलेज की एक छात्रा ने रैगिंग के कारण आत्म हत्या का प्रयास किया। 20 मार्च 2009 को शिमला के मेडिकल

यू.जी.सी. ने वर्ष 2009 में रैगिंग रोकने के लिए कड़े नियम बनाये हैं जिसके अनुसार आरोपी छात्र पर ढाई लाख रुपये का जुर्माना लगाकर उसे संस्थान से निकाला भी जा सकता है। देश के किसी कोने से एक फोन काल के द्वारा रैगिंग की रिपोर्ट की जा सकती है। इसके अलावा विद्यार्थियों, शिक्षकों एवं अभिभावकों में जागरूकता लाना होगा। रैगिंग के मूल कारणों को भी दूर करना होगा।

कॉलेज के पाँच छात्र रैगिंग का शिकार बन गये। कोयम्बटूर के एक छात्र को रैगिंग के नाम पर इतना पीटा गया कि उसकी आँख की रोशनी जा सकती है। रैगिंग की भयावहता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि विगत दो वर्षों के दौरान रैगिंग के 89 मामले दर्ज किये गये जिनके कारण 55 छात्रों की जान जा चुकी है।

रैगिंग को रोकने के लिए अनेकों उपाय किये गये हैं। यू.जी.सी. द्वारा प्रो. के.पी. एस. उन्नी की अध्यक्षता में गठित समिति ने रैगिंग को दुष्कृत्य बताते हुए गैर जमानती अपराध घोषित करने की संस्तुति की। यह भी प्राविधान किया गया कि रैगिंग रोकने में असफल संस्थानों का अनुदान चेतावनी देने के बाद रोका जाय तथा अन्त में मान्यता रद्द करने को संस्तुति की जाय। प्रीवेंशन ऑफ रैगिंग इन कॉलेजेज ऐंड इंस्टीट्यूशंस ऐक्ट 2005 पास किया गया। इसमें रैगिंग का दोषी पाये जाने पर छात्र को तीन माह का कठोर कारावास तथा पच्चीस हजार रुपया जुर्माना करने का प्राविधान है। कुछ मामलों में रैगिंग करने वालों पर जुर्माना भी किया गया तथा उन्हें निलम्बित भी किया गया। किन्तु फिर भी इसमें कोई कमी नहीं आई। प्रो. हैक नुवर (HANK NUWER) का कहना है कि अमेरिका में रैगिंग खुले तौर पर होती थी। किन्तु इसमें रोक लगाने के बाद छिपे तौर पर होने लगी। उन्होंने अपनी पुस्तकों 'रांग्स ऑफ पैसेज' तथा 'हेजिंग रीडर' में लिखा है कि हेजिंग व रैगिंग शिक्षा संस्थान रूपी उपवन में जंगली घास की भाँति हैं जिसे एक ओर से हटाओ तो दूसरी ओर निकल आती है। इस प्रकार उनके विचार से अमेरिका के अनुभव को देखते हुए भारत में भी इसे पूर्णरूप से समाप्त करना सम्भव नहीं है। उनका कथन अमेरिका की परिस्थितियों एवं वहाँ की विचारधारा को देखते हुए सही है। रैगिंग भी एक प्रकार का अपराध है। चोरी, डकैती आदि अपराधों पर कानूनी व नैतिक रूप से रोक है फिर भी ये अपराध पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हो पाये हैं। यही स्थिति अमेरिका व पश्चिमी देशों में रैगिंग की है।

भारत की स्थिति भिन्न है। रैगिंग व अन्य अपराधों में मूलभूत अन्तर है। पहला यह कि रैगिंग का क्षेत्र अन्य अपराधों की तुलना में बहुत सीमित है। रैगिंग के अपराधी एवं पीड़ित दोनों की संख्या भी सीमित है। दूसरा मूल अन्तर यह है कि अन्य अपराधों में अपराधी को कुछ न कुछ भौतिक लाभ होता है। जबकि रैगिंग करने वाले को कोई लाभ नहीं होता, उसे केवल दूसरे को पीड़ा देने में आनन्द का अनुभव होता है। अंग्रेजी में ऐसे व्यक्ति को सैडिस्ट कहते हैं। हिन्दी में इसका पर्यायवाची शब्द नहीं मिलेगा क्योंकि हमारी संस्कृति एवं सभ्यता में ऐसी भावना या अनुभूति की कल्पना नहीं की जा सकती थी।

भारत में रैगिंग को पूर्ण रूप से समाप्त किया जा सकता है। इसके लिए सर्वप्रथम सख्त कानून बनाकर उसका अनुपालन सुनिश्चित करना होगा। यू.जी.सी. ने वर्ष 2009 में रैगिंग रोकने के लिए कड़े नियम बनाये हैं जिसके अनुसार आरोपी छात्र पर ढाई लाख रुपये का जुर्माना लगाकर उसे संस्थान से निकाला भी जा सकता है। देश के किसी कोने से एक फोन काल के द्वारा रैगिंग की रिपोर्ट की जा सकती है। इसके अलावा विद्यार्थियों, शिक्षकों एवं अभिभावकों में जागरूकता लाना होगा। रैगिंग के मूल कारणों को भी दूर करना होगा।

परिचय या इंट्रोडक्शन की प्रथा भी वह भूमि है जिसमें रैगिंग अंकुरित होकर विशाल विष वृक्ष का रूप धारण करता है। अतः इसे समाप्त किया जाना चाहिये।

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रैगिंग की निगरानी के लिए गठित राघवन कमेटी ने रैगिंग के दौरान अमन काचरू की मृत्यु के मामले में जो जांच रिपोर्ट दी उसके तथ्य चौकाने वाले हैं। इसमें दो मुख्य बातें कही गईं। पहली यह है कि हिंसा का मुख्य कारण शराबखोरी था। सर्वोच्च न्यायालय ने इसे रैगिंग से भी खतरनाक माना। दूसरी अध्यापकों द्वारा फ्रेशर्स को सीनियर्स की यौन इच्छा को पूरा करने के लिए समझाना था। (वे उन्हें अपने पास निरोध रखने की सलाह देते थे।) इसी प्रकार 27 सितम्बर 2007 को सेन्ट स्टीफेन्स कॉलेज देहरादून में रैगिंग की एक घटना में राघवन कमेटी की रिपोर्ट पर कॉलेज में प्रिन्सिपल ने आपत्ति जताते हुए कहा कि यह केवल उनके कॉलेज व चार विद्यार्थियों को बदनाम करने के लिए किया गया है जब कि वे यह मानते हैं कि वे विद्यार्थी घटना के समय नशे में धुत थे। जिन व्यक्तियों पर रैगिंग रोकने का दायित्व है यदि वही इस प्रकार उसे बढ़ावा दें तो रैगिंग कैसे रुक सकती है। ऐसे व्यक्तियों पर सख्त कानूनी कार्यवाही वांछित है। शिक्षण संस्थाओं में शराब पर पूर्णरूप से प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक है।

रैगिंग की भाँति शिक्षण संस्थाओं में बढ़ती हिंसा भी चिन्ता का विषय है। दोनों के समाप्त न हो पाने का कारण है, भोगवादी प्रवृत्ति, तुरन्त सुख के सभी साधन प्राप्त करने की लालसा एवं संवेदनहीनता। पहले इन कारणों को दूर करना होगा। इसका एक मात्र उपाय है प्रवृत्ति में परिवर्तन। मानव मस्तिष्क के तीन भाग हैं: एक से बुद्धि का, दूसरे से भावों का तथा तीसरा भाग जो हमारे सिर के पीछे होता है, से सहज क्रिया या रिफ्लेक्ट ऐक्शन का विकास होता है। अभ्यास से इनमें तीव्रता आती है अन्यथा ये निष्क्रिय पड़े रहते हैं। शिक्षण संस्थाएं केवल बुद्धि के विकास के लिए प्रयत्न करती हैं। रिफ्लेक्ट ऐक्शन का उपयोग प्रधानतया वाहन चलाने में होता है। इसी कारण बहुत कम पढ़े ड्राइवर का भी रिफ्लेक्स ऐक्शन विद्वान व्यक्ति से तेज होता है। किन्तु भावों के विकास के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया जाता अतः वह निष्क्रिय रहता है।

शिक्षा में केवल नैतिक शिक्षा का विषय जोड़ देने मात्र से इसका विकास नहीं हो सकता। प्राणायाम व योग के अभ्यास द्वारा ही भावों का विकास होगा व मौलिक प्रवृत्ति में परिवर्तन होकर संवेदनशीलता, प्रेम, त्याग आदि गुणों का विकास व स्वार्थ, क्रूरता एवं सैडिस्ट भावना का विनाश होगा। इसे शिक्षा का भाग बनाना होगा। यह कार्य कठिन है किन्तु असम्भव नहीं। रैगिंग व किशोर हिंसा को पूर्ण रूप से समाप्त करने का यही एक मात्र उपाय है।

५

66/2 बी. स्टेनली रोड,
इलाहाबाद

हिन्दी का प्रचार-प्रसार : विश्व संदर्भ

वृ दया प्रकाश सिन्हा

जब विश्व स्तर पर हिन्दी के प्रचार-प्रसार की बात आती है, तो सबसे पहला प्रश्न उठता है कि क्यों विश्व स्तर पर हिन्दी का प्रचार किया जाये ?

भारत की सभी भाषाएं भारतीय संस्कृति की संवाहिका हैं, इनमें हिन्दी का विशेष महत्व है। यह भारत के सबसे बड़े भू-भाग की भाषा है। भारत के बहुजन हिन्दी बोलते हैं। अहिन्दी प्रदेशों में भी हिन्दी बोली और समझी जाती है। भारत के चार महानगरों में से तीन चेन्नई, मुम्बई और कोलकाता अहिन्दी प्रदेशों की राजधानियां हैं। यहां पर संबंधित प्रदेशों की भाषा के अतिरिक्त भारत की अन्य भाषाओं में से जो सर्वाधिक बोली और समझी जाती है, वह हिन्दी है। इसी के आधार पर संविधान ने भारत की सभी भाषाओं में से हिन्दी को राजभाषा का गौरव प्रदान किया था। भारत की सांस्कृतिक संपन्नता और विविधता की अभिव्यक्ति, सर्वसमावेशिक हिन्दी के माध्यम से ही संभव है। अतएव विश्व की विभिन्न संस्कृतियों के बीच, भारत की संस्कृति को पूर्णता के साथ प्रतिष्ठित करने का दायित्व हिन्दी पर बनता है। इस परिप्रेक्ष्य में विश्व पटल पर हिन्दी के प्रचार-प्रसार की अनिवार्यता स्वयंसिद्ध है।

यह सच है कि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के अभूतपूर्व आविष्कारों की कृपा से यह विशाल संसार एक विश्व ग्राम बनकर सिमट गया है। संचार-माध्यमों की क्रान्ति अभूतपूर्व है। दूरस्थ देशों में अलग-अलग बिखरी संस्कृतियां आज एक दूसरे के निकट और आमने-सामने आ गई हैं। उनमें लगातार आदान-प्रदान और विचार-विनिमय हो रहा है। यह भी सच है कि एक अधोषित विश्व-संस्कृति अनजाने ही विकसित हो रही है। इसमें अगर पश्चिमी पोशाक की पतलून है, तो चीनी भोजन और भारतीय योग भी है। हर संस्कृति के श्रेष्ठतम तत्वों और विचारों को ग्रहण करना तथा आत्मसात करना विश्व संस्कृति की विशेषता है।

विश्व-संस्कृति का एक नकारात्मक पक्ष भी है। क्या धनी-मानी संपन्न देशों की संस्कृतियां पूरे विश्व पर छा जाएंगी ? संस्कृति किसी भी देश की अस्मिता होती है। क्या शक्तिशाली देशों की प्रभुता के सम्मुख छोटे-छोटे देशों की संस्कृतियां विलोप हो जाएंगी ? यह आवश्यक नहीं कि जो देश शक्तिसंपन्न हैं, उनकी संस्कृतियां भी उतनी ही उदात्त और श्रेष्ठ हों। देश की आर्थिक सम्पन्नता और सांस्कृतिक संपन्नता में कोई प्रत्यक्ष गणित नहीं

है। मानव सभ्यता की हजारों वर्षों की प्रगति की विरासत, विश्व की विविध संस्कृतियों में बिखरी है। प्रभुतापूर्ण देशों से उद्भूत विश्व संस्कृति की आंधी में इनके विलीन होने से रोकने के लिए आवश्यक है कि विश्व की वाटिका में विविध और बहुरंगी संस्कृतियों के पुष्पों को संजोया जाए। सांस्कृतिक एकरूपता एक प्रतिगामी कदम होगा। यह विश्व को रंगहीन और श्रीविहीन कर देगा। इस संदर्भ में भारतीय सभ्यता और संस्कृति की पांच हजार वर्षों की अजस्र धारा को सूखने से बचाना है। सम-सामयिक बाजारवाद और 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली अनैतिक मानसिकता के प्रदूषण से भी इसे बचाना है। विश्व के मानचित्र पर भारतीय संस्कृति के रंग भरने का ऐतिहासिक दायित्व हिन्दी के कंधों पर है। यह हिन्दी के प्रचार के महत्व को अतिरिक्त रूप से रेखांकित करता है।

विदेशों में हिन्दी प्रचार के लिए तीन श्रेणी के जनसमूह श्रेणीबद्ध किए जा सकते हैं। प्रथम गैरभारतीय विदेशी, द्वितीय वे भारतवंशी, जिनके पुरखे विदेशों में रोजी-रोटी की तलाश में गए थे और अब वहीं बस गए हैं और तृतीय, विदेशों में बसे प्रथम पीढ़ी के प्रवासी भारतीय। इन तीनों ही श्रेणी के लोगों पर हिन्दी सीखने के लिए कोई आर्थिक दबाव या अनिवार्यता नहीं है। हिन्दी का इनकी रोजी-रोटी से कोई संबंध नहीं है। हिन्दी पढ़कर विदेशों में कोई अच्छी नौकरी नहीं मिल सकती और न ही किसी प्रकार का लाभ।

विदेशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार की रणनीति निश्चित करते समय इस बात का ध्यान रखना होगा कि किस श्रेणी के विदेशियों के लिए यह योजना बनाई जा रही है। जहां आर्थिक, अकादमिक, जासूसी या धर्म प्रचार के लिए विशुद्ध विदेशी हिन्दी का पठन-पाठन करते हैं, वहीं भारतवंशी विदेशियों और अप्रवासियों के लिए हिन्दी उनकी भावनात्मक और सांस्कृतिक आवश्यकता से जुड़ी है। इसलिए विशुद्ध विदेशियों और भारतवंशी विदेशियों में हिन्दी प्रचार-प्रसार के लिए एकदम अलग-अलग योजनाएं उनकी आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के अनुरूप होनी चाहिए।

पूरे संसार को ज्ञात है कि यद्यपि हिन्दी भारत में बहुसंख्यक लोगों की भाषा है, फिर भी भारत से व्यापार करने के लिए हिन्दी के ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं है। भारत में व्यापार के लिए अंग्रेजी जानना आवश्यक है। अतएव अंग्रेजी न जानने वाले देश चीन, जापान, रूस, जर्मनी, फ्रांस, इटली आदि की कंपनियां भारत में व्यापार करने के लिए अपने देश के प्रतिनिधियों/कर्मचारियों को अंग्रेजी में प्रशिक्षित करके भारत भेजती हैं। सन् 47 में आजादी के बाद भारत से व्यापार करने के लिए जापान ने विशेष हिन्दी प्रशिक्षण की व्यवस्था की थी, किन्तु जब उनको वस्तु स्थिति का ज्ञान हुआ, तो उन्होंने हिन्दी प्रशिक्षण की व्यवस्था को समाप्त कर दिया। इस परिप्रेक्ष्य में, यह तथ्य हमेशा ध्यान में रखना होगा कि विदेशों में हिन्दी सीखने के लिए किसी भी वर्ग में आर्थिक कारणों से अनिवार्यता नहीं है।

कुछ विदेशी विश्वविद्यालयों में एशिया विभाग है, दक्षिण एशिया या दक्षिण-पूर्व एशिया विभाग हैं, जिनमें चार-छह विद्यार्थी सामान्य जिज्ञासा से हिन्दी सीख लेते हैं।

विदेशी सरकारों के गुप्तचर विभागों को भी कुछ एक हिन्दी जानने वालों की जरूरत होती है। कभी कोई विदेशी लड़की किसी भारतीय नौजवान से विवाह कर ले, तो वह अपने पति के देश की भाषा सीखना चाह सकती है। कुछ ईसाई संगठन, भारत में ईसाई धर्म के प्रचार के लिए भी हिन्दी सीखने की अनिवार्यता को पहचानते हैं और व्यवस्था करते हैं। विशुद्ध शोध और ज्ञान से प्रेरित हिन्दी अध्येता उंगली पर गिने जा सकते हैं।

विदेशियों में हिन्दी के प्रचार का सर्वश्रेष्ठ साधन है-विश्वविद्यालय। आज आवश्यकता है कि जिन विश्वविद्यालयों में पहले से हिन्दी का अध्यापन हो रहा है वहां हिन्दी के अध्यापन को और अधिक सशक्त और सघन किया जाए। उनके पुस्तकालयों को खुले हाथों से हिन्दी पुस्तकें निःशुल्क दी जाएं।

विदेशी हिन्दी अध्यापक अन्य विदेशी छात्रों की, हिन्दी पढ़ने के लिए अप्रत्यक्ष और अवचेतन स्तर पर, जिज्ञासा जागृत करते हैं। अतएव विदेशों में हिन्दी के प्रचार के लिए इन विदेशी हिन्दी अध्यापकों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। इन अध्यापकों को विशेष रूप से सम्मानित करने की आवश्यकता है। भारत के समाचार पत्रों पत्रिकाओं में इन विदेशी हिन्दी अध्यापकों पर विशेष लेख प्रकाशित करने की व्यवस्था की जाए और वे पुरस्कृत किए जाएं। हिन्दी अध्यापकों और विद्यार्थियों के लिए भारत यात्राएं, प्रतियोगिताएं, विशेष कार्यशालाएं, साहित्यिक आयोजन आदि भी क्रियान्वित किए जाने चाहिए। जिन प्रमुख विश्वविद्यालयों में हिन्दी विभाग नहीं है, वहां पर भारत सरकार को ऐसे विभाग खुलवाने का प्रयत्न करना चाहिए।

विदेशी विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों द्वारा नाट्यायोजन बहुत ही महत्वपूर्ण है। कक्षा में सीखी हुई हिन्दी का नाटकों में प्रयोग विद्यार्थियों को अपनी हिन्दी बोलने की क्षमता के प्रति आश्वस्त करेगा। साथ ही भारत के विश्वविद्यालयों के हिन्दी नाट्य दलों की प्रस्तुतियां इन विदेशी हिन्दी विद्यार्थियों के लिए समय-समय पर आयोजित की जानी चाहिए। हिन्दी की आधार भूमि पर नवयुवकों का अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय हिन्दी का भविष्य सुरक्षित रखेगा।

दूसरी श्रेणी में सुरीनाम, फीजी, मॉरीशस, ट्रिनीडाड, गुयाना आदि देश हैं, जहां भारतवंशी डेढ़ दो सौ वर्ष पूर्व गिरमिट प्रथा के अंतर्गत मजदूर बना कर ले जाए गए थे। इन भारतवंशियों में अभी भी भारत जीवित है, यद्यपि वह हर पीढ़ी के साथ कुछ कम होता जा रहा है। इन गिरमितियों में बंगाली और मद्रासी बोलने वाले भी थे, किन्तु अधिकांश बिहार और उत्तर प्रदेश के थे। अतएव अवधी और भोजपुरी मिश्रित हिन्दी इनकी भाषा बन गई। कालांतर में अहिन्दी भाषी प्रान्त से ले जाए गए गिरमितियों ने भी हिन्दी बोलना सीख लिया। इस प्रकार इन सभी देशों के भारतवंशियों में, किसी न किसी रूप में, हिन्दी जीवित है।

यद्यपि गिरमितये स्वयं अनपढ़ थे, फिर भी एक ऐसी संस्कृति के वारिस थे, जिसने सदैव शिक्षा और ज्ञान की सरस्वती की पूजा की है, और जिसने कभी पुस्तकालय नहीं जलाए। इसीलिए घोर दरिद्रता में भी अपना पेट काट कर, अधभूखे रह कर गिरमितियों ने

अपने स्कूल चलाए। इनको विदेशी सरकार से न तो कोई आर्थिक सहायता मिलती थी, और न कोई प्रोत्साहन। स्वयं आपसी सहकार से आर्थिक संसाधनों को एकजुट करके स्कूल चलाए, जिनमें हिन्दी की पढ़ाई सर्वोपरि थी।

इन सभी देशों में भारतवंशियों के लिए हिन्दी रोटी और रोजगार की भाषा नहीं है। हिन्दी उनके लिए आजीविका का साधन नहीं है। इसलिए हिन्दी का अध्ययन और अध्यापन धीरे-धीरे कम हुआ है। यहां उल्लेखनीय है कि अपवाद स्वरूप अनेक भारतवंशी इन देशों में मिशन की तरह हिन्दी के प्रचार को समर्पित हैं। फिर भी हिन्दी के प्रयोग की वहां सीमाएं बन गई हैं। प्रायः भारतवंशी अपनी हिन्दी आधारित मातृभाषा-सूरीनामी, क्रियोल, फीजी आदि आपस में घरों में और अनौपचारिक संदर्भों में बोलते हैं। साथ ही वह मानक हिन्दी भी समझते हैं। औपचारिक संदर्भों में और शिक्षण में प्रयोग करते हैं, किन्तु देवनागरी में उसे लिख नहीं पाते।

इस श्रेणी के सभी देशों में पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी पठन-पाठन में वृद्धि हुई है। भारत सरकार द्वारा स्थापित सांस्कृतिक केन्द्रों द्वारा भी हिन्दी के प्रचार को बल मिला है। सांस्कृतिक केन्द्र में जो भारतवंशी संगीत सीखता है वह अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय संस्कृति और भाषा से भी जुड़ता है।

डेढ़-दौ सौ वर्षों में इन देशों में हिन्दी को जीवंत रखने में हिन्दी सिनेमा का विशेष अवदान है। सिनेमा और नाटक भाषा को ग्लैमराइज (आकर्षणमंडित) करते हैं। हिन्दी सिनेमा के माध्यम से जहां भारतवंशी महिलाएं साड़ी पहनने के नए-नए फैशन सीखती रही हैं, वहीं सामान्य भारतवंशियों को भी लगातार हिन्दी से संपर्क बनाए रखने और मुहावरेदार हिन्दी सुनने का अवसर मिलता रहा है। जब भारतीय फीजी, मॉरीशस आदि देश जाते हैं, तो इस कारण से ही उन्हें लगता है कि भारत से दूर, वह एक दूसरे भारत में पहुँच गए हैं।

भारतवंशी देशों में हिन्दी को लेकर एक नया विवाद इधर देखने में आया है। कुछ लोगों का कहना है कि फीजी, सूरीनाम, ट्रिनीडाड, मॉरीशस तथा गयाना में सामान्य भारतवंशियों की अपनी बोली है। यद्यपि इन बोलियों के मूल में अवधी, भोजपुरी, मगही आदि भारत की भाषाएं हैं, फिर भी पिछले डेढ़ सौ वर्षों में, अन्य विदेशी भाषाओं के संपर्क में इनका अपना अलग चरित्र निकल कर आया है। इनका सर्वथा स्वतंत्र एक नवीन भाषा का स्वरूप है, जो हिन्दी (मानक हिन्दी अथवा खड़ी बोली) से एकदम भिन्न है। मुझे याद है कि आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व एक पुस्तक लिख कर यह स्थापित करने का प्रयास किया था कि फीजी हिन्दी मानक हिन्दी से स्वतंत्र एक अलग भाषा है। इन लोगों का मानना है कि इन देशों में हिन्दी एक विदेशी भाषा के समान है। हिन्दी का प्रचार, वहां की अपनी बोली, जैसे फीजीबात, सूरीनामी, क्रियोल आदि का धीरे-धीरे ह्रास कर देगी। भारतवंशी जिस सहजता से अपनी भाषाओं में अभिव्यक्ति कर सकते हैं, वह आयातित भाषा (मानक हिन्दी) में संभव नहीं है। यह भारतवंशी बहुल विदेशों में हिन्दी के प्रचार के विरुद्ध एक तर्क है।

यह तर्क एक अर्ध-सत्य है। यह अज्ञान से प्रेरित है। यह जमीनी सच्चाई को नहीं देखता। ऐसी ही स्थिति भारत में 19वीं शताब्दी के अंत तथा बीसवीं शताब्दी की प्रारंभिक दशाब्दियों में थी।

खड़ी बोली दिल्ली और मेरठ के आस-पास के क्षेत्रों के अतिरिक्त और कहीं नहीं बोली जाती थी। केवल उत्तर प्रदेश और बिहार में ही ब्रजभाषा, बुन्देलखण्डी, अवधी, भोजपुरी, मगही, मैथिली, बज्जिका आदि बोली जाती थीं। इनमें ब्रजभाषा, अवधी और मैथिली भाषाओं की साहित्यिक रचनाएं खड़ी बोली की अपेक्षा कई गुणा संपन्न थीं। किन्तु छापाखाने और रेलगाड़ी के प्रचार के बाद एक ऐसी भाषा की आवश्यकता अनुभव हुई जो प्रदेश में एक साथ समझी जाए। ऐतिहासिक कारणों से दर्जनों भाषाओं के बीच खड़ी बोली एक मानक भाषा के रूप में और राज-भाषा के रूप में चुनी गई। इतिहास का अपना तर्क और गतिमयता होती है। अंग्रेजी ने उर्दू के माध्यम से खड़ी बोली को फारसी के स्थान पर अदालतों की भाषा बनाया था। कालांतर में राष्ट्रीय शक्तियों की प्रबल धारा ने खड़ी बोली को देवनागरी लिपि से संवार कर मानक हिन्दी के रूप में प्रतिष्ठित किया।

आज उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, झारखंड तथा छत्तीसगढ़ में बिखरी तमाम भाषाओं में मानक हिन्दी सर्वसमावेशित एवं सर्वस्वीकार्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। रचनात्मक साहित्य जैसे कविता, कहानी, नाटक आदि के अतिरिक्त हिन्दी में दर्शन, भाषा विज्ञान, भूगोल, इतिहास, रसायन शास्त्र, भौतिक विज्ञान, जीव-विज्ञान, कृषि, चिकित्सा विज्ञान, यांत्रिकी, सूचना प्रौद्योगिकी आदि का इतना साहित्य पिछले सौ वर्षों में रचा गया है कि वह अब सभी क्षेत्रीय भाषाओं (बोलियों) से अधिक संपन्न हैं। इतिहास की धारा अब मोड़ी नहीं जा सकती। अगर आज कहें कि विश्वविद्यालयों में हिन्दी का स्थान ब्रजभाषा या अवधी को दिया जाए तो वह हास्यास्पद लगेगा। इसी तरह मानक हिन्दी का स्थान फीजी में फीजीबात नहीं ले सकती है और न सूरीनाम में सूरीनामी।

फीजीबात, सूरीनामी आदि की सीमाएं हैं। ये बोलियां घर और बाजार के अनौपचारिक संदर्भों में प्रभावी हो सकती हैं। घर और बाजार की पार्श्व भूमि पर लिखे उपन्यासों और कविताओं में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हो सकती हैं। किन्तु विचार साहित्य इन बोलियों के सामर्थ्य के बाहर है। गूढ़ दर्शन, विज्ञान, प्रौद्योगिकी और यान्त्रिकी का साहित्य न तो इन बोलियों में उपलब्ध है और न इनकी रचना के लिए इन बोलियों में शब्द संपदा है। यदि इन भारतवंशी-बहुल देशों में किसी भारतीय भाषा को सार्थक भूमिका का निर्वहन करना है, तो वह स्थानीय बोली नहीं, अपितु मानक हिन्दी ही होगी।

यहां यह भी विचारणीय है कि क्या हिन्दी और स्थानीय भारतवंशी बोली में विरोध का संबंध होगा, या एक दूसरे की पूरकता का ?

भारत में अवधी, मगही, भोजपुरी आदि बोलियां हिन्दी की पूरक भाषाएं हैं। मानक हिन्दी के पाठ्यक्रम में अवधी (तुलसीदास), भोजपुरी (रविदास), मैथिली (चंडीदास,

विद्यापति), बुंदेली (ईसुरी) आदि के कवि पढ़ाए जाते हैं। आज भी भारत में मानक हिन्दी में साहित्य रचना के साथ भोजपुरी अवधी, मेवाती, मारवाड़ी आदि में साहित्य रचा जा रहा है। क्षेत्रीय भाषाओं और मानक हिन्दी के बीच पारस्परिक पूरकता ही हिन्दी की शक्ति है। इसी प्रकार भारतवंशी-बहुल देशों में स्थानीय भाषाओं और मानक हिन्दी के बीच भी पारस्परिक पूरकता का संबंध होना चाहिए जो एक को हटाकर दूसरे को स्थापित करने की बात करते हैं, वे न तो हिन्दी के मित्र हैं और न उन देशों की भाषाओं के हितैषी।

तीसरी श्रेणी में अमरीका, यूरोप, मध्य एशिया आदि के देश हैं, जहां आजादी के बाद प्रवासी भारतीयों के संबंध भारत से लगभग बराबर बने रहे हैं। इन प्रवासी भारतीयों में अंग्रेजी का बोल-बाला है और अपनी भाषा के बाद ये अपने देश की संस्कृति से भी धीरे-धीरे कटते जा रहे हैं। किन्तु इनके हृदयों में अपनी पहचान बनाए रखने की ललक है। अन्तर्राष्ट्रीय समुदायों के बीच जब प्रवासी भारतीय देखते हैं कि चीनी, जापानी, स्पैनी, इटलीवासी, फ्रांसीसी सब अपनी-अपनी परंपराओं पर गर्व करते हैं, और घरों में अपनी मातृभाषा में बोलते हैं, तो प्रवासी भारतीय के मन में भी अपनी पहचान की ललक जागती है। वह जमाने गए, जब लंदन से वापस भारत आने वाला जयकिशन, जैक्सन बनकर लौटता था। अपनी जड़ों के प्रति सम्मान का भाव, प्रवासी भारतीयों में हिन्दी के प्रसार के लिए अनुकूल है। कमी है तो भारत में, भारतीय शासकों में हिन्दी के प्रसार के लिए इच्छा शक्ति की।

प्रायः हिन्दी में निष्णात कुछ विदेशी तथा प्रवासी भारतीय हिन्दी में अपनी रचनात्मक प्रतिभा कहानी और कविता के माध्यम से प्रकट करते हैं। विदेशों में हिन्दी की पत्रिकाओं का अभाव है। अतएव वे चाहते हैं कि उनकी रचनाएं भारत के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हों। वैसे भी इन विदेशी रचनाकारों के लिए उनकी कृतियों का भारत में प्रकाशन उनको एक विशेष सम्मान और उपलब्धि का संतोष देता है। इसलिए वे अपनी कृतियों के भारत में प्रकाशन के लिए लालायित रहते हैं। ऐसा प्रायः संभव नहीं हो पाता। भारत में पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक विदेशी रचनाकारों की कृतियों को भारतीय साहित्यकारों की रचनाओं से तौलते हैं और उनको हल्का पाते हैं और इसलिए प्रकाशित नहीं करते। इससे वे निराश हो जाते हैं। कुण्ठाग्रस्त हो वे लिखना बंद कर देते हैं। इसके साथ ही उनका हिन्दी के प्रति उत्साह और समर्पण भी ठंडा हो जाता है।

यह पूरी स्थिति विदेशी रचनाकारों के साथ अन्याय है, और विदेशों में हिन्दी प्रचार के अभियान में भारी अवरोध है। विदेशी रचनाकारों की कृतियाँ से तुलना मूलतः त्रुटिपूर्ण है जो विदेशी हिन्दी को द्वितीय भाषा के रूप में सीख रहे हैं, वे उन भारतीय साहित्यकारों के सामने कहां खड़े हो सकते हैं जो आजीवन हिन्दी की सांस लेते हैं। विदेशी साहित्यकारों की एक अलग श्रेणी है। इनकी रचनाओं का स्वतंत्र मूल्यांकन होना चाहिए-भारतीय साहित्यकारों के परिप्रेक्ष्य में नहीं। भारत की हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में एक विशेष खण्ड

केवल विदेशी साहित्यकारों की रचनाओं के लिए आरक्षित होना चाहिए। इस माध्यम से उनको भारत में प्रकाशन के अधिक अवसर प्राप्त होंगे। उनका मूल्यांकन विदेशी हिन्दी लेखन के प्रतिमान के आधार पर हो सकेगा। हिन्दी के अंतर्राष्ट्रीय विस्तार के आकांक्षियों को विदेशी रचनाकारों को विशेष सम्मान देने की व्यवस्था करनी पड़ेगी।

भारत भारतवंशियों के सपनों का देश है। वह नहीं चाहते कि उस सपने को खण्डित किया जाए। भारत की दरिद्रता से उनका कुछ लेना-देना नहीं है। वे भारत को दरिद्रता से निवारने के लिए कुछ भी करने में समर्थ नहीं है। फिर क्यों दरिद्रता के दृश्य देखकर अपने सपनों को खंडित करें। इस परिप्रेक्ष्य में हिन्दी के विदेशों में प्रचार से संबद्ध अधिकारियों और समाज सेवकों को यह भी देखना होगा कि वे हिन्दी के माध्यम से कैसा भारत निर्यात

इस परिप्रेक्ष्य में हिन्दी के विदेशों में प्रचार से संबद्ध अधिकारियों और समाज सेवकों को यह भी देखना होगा कि वे हिन्दी के माध्यम से कैसा भारत निर्यात करते हैं। क्या वे हिन्दी के माध्यम से समाज के दुर्गुणों को जैसे जातिगत-विभेद, दलितों पर अत्याचार, सती-प्रथा, राजनैतिक अपराधीकरण, नौकरशाही भ्रष्टाचार चित्रित करते हैं, या कि एक ऐसे भारत को प्रस्तुत करते हैं जो हजारों साल की गुलामी से उद्भूत इन सामाजिक विकृतियों से ऊपर उठकर, पूरी मानवता के लिए सत्य, अहिंसा, प्रेम और समता के मार्ग का अन्वेषण कर रहा है ?

करते हैं। क्या वे हिन्दी के माध्यम से समाज के दुर्गुणों को जैसे जातिगत-विभेद, दलितों पर अत्याचार, सती-प्रथा, राजनैतिक अपराधीकरण, नौकरशाही भ्रष्टाचार चित्रित करते हैं, या कि एक ऐसे भारत को प्रस्तुत करते हैं जो हजारों साल की गुलामी से उद्भूत इन सामाजिक विकृतियों से ऊपर उठकर, पूरी मानवता के लिए सत्य, अहिंसा, प्रेम और समता के मार्ग का अन्वेषण कर रहा है ? यह प्रयत्न करना होगा कि हिन्दी प्रचार के मार्ग से भारत की हजारों साल की सभ्यता की उपलब्धियों से विदेशी अवगत हो सकें। संगीत, नृत्य, नाटक, चित्रकला, शिल्प, वास्तु, इतिहास, धार्मिक सहिष्णुता का परिचय उन्हें हिन्दी के माध्यम से हो सके। ऐसी कहानियों का हिन्दी के पाठ्यक्रम में समावेश, जो आन्तरिक विवाद और सामाजिक पतन मात्र चित्रित करती हैं, भारत की छवि विदेशों में धूमिल करेगी। अतएव केन्द्रीय स्तर पर एक ऐसी समन्वय समिति की आवश्यकता है जो विदेशों में हिन्दी प्रचार-प्रसार के लिए सुविचारित नीति निर्धारण के साथ कार्यान्वयन हेतु विशिष्ट योजनाओं की संस्तुति करें।

संपर्क-बी-255, सेक्टर-26,

नोएडा, उत्तर प्रदेश-201301

९

प्राचीन भारत-अद्भुत भारत

५ सुरेश चंद्र

एक अध्याय, जिसका प्रारम्भ पाश्चात्य था, उसका भारतीय अन्त होना आवश्यक है। मानव इतिहास के इस सर्वाधिक विनाशकारी क्षण में मानवता के लिये भारतीय शैली ही एक मात्र मोक्ष का मार्ग है। -प्रसिद्ध इतिहासकार अर्नल्ड टायन्बी

मैंने संपूर्ण भारतवर्ष की यात्राएं की हैं एवं मुझे एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं दिखलाई पड़ा जो चोर या भिखारी हो। इस देश में मैंने इतनी विपुल संपदा, इतना उच्च नैतिक चरित्र एवं इतने प्रतिभाशाली लोगों को देखा है कि मुझे नहीं लगता कि इस देश को हम कभी जीत पायेंगे। इसको जीतने का एक ही तरीका है कि हम इसकी रीढ़ की हड्डी को तोड़ दें एवं वह रीढ़ की हड्डी है इसकी आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत। इसके लिए मेरा प्रस्ताव है कि इसकी प्राचीन शिक्षा प्रणाली तथा संस्कृति को बदल दिया जाये क्योंकि यदि भारतवासी यह सोचने लगे कि जो कुछ भी विदेशी एवं अंग्रेजी है वह उनकी अपनी वस्तुओं से श्रेष्ठ है तो उनका आत्म सम्मान एवं संस्कृति विनष्ट हो जायेगी एवं जैसा कि हमारा लक्ष्य है, वे सच्चे अर्थों में एक विजित राष्ट्र बन जाएंगे।

(ब्रिटिश संसद के समक्ष 2 फरवरी 1835 को लार्ड मैकाले द्वारा दिये गये भाषण का अंश)

लार्ड मैकाले का यह भाषण अनेक अवसरों पर एवं अनेक संदर्भों में दुहराया जाता रहा है एवं यह आज भी समीचीन है। अंग्रेज शासकों ने हमारी शिक्षा प्रणाली में कुछ ऐसे आमूल चूल परिवर्तन किये कि हम अपनी प्राचीन धरोहर, संस्कृति एवं उपलब्धियों पर से अपना विश्वास खो बैठे हैं एवं हम में हीनता की एक भावना घर कर गई है। अपनी संस्कृति, धरोहर एवं उपलब्धियों के विषय में हमारी कुछ धारणाएं निम्न प्रकार हैं-

- हमारा दर्शन उत्कृष्ट है किन्तु विज्ञान के क्षेत्र में हम कोरे हैं।
- संस्कृत केवल धर्म ग्रन्थों की भाषा है।
- वेद, उपनिषद् इत्यादि में केवल कर्मकांड एवं दर्शन का ही वर्णन किया गया है।
- एलोपैथी में आज इतने अनुसंधान एवं प्रगति हो चुकी है अतः आयुर्वेद का कोई विशेष महत्व नहीं रह गया है।

इस छोटे से लेख का उद्देश्य उस प्राचीन भारतवर्ष की एक झलक प्रस्तुत करना है जहाँ केवल दर्शन शास्त्र नहीं अपितु विज्ञान, रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, गणित इत्यादि

का अध्ययन अध्यापन भी अत्यंत उच्च कोटि का था एवं इन विषयों में अनेक उपलब्धियाँ भी हासिल हुई थीं।

भारत शब्द का अर्थ ही ऐसा स्थान है जो ज्ञान का भंडार हो। यह ज्ञान किन केन्द्रों से फैलता था इसका अनुमान तक्षशिला एवं नालंदा विश्वविद्यालयों के संक्षिप्त विवरण से लगाया जा सकता है। तक्षशिला विश्वविद्यालय की स्थापना आज से लगभग 2700 वर्ष पूर्व हुई थी। बैबीलोनिया, यूनान, अरब, चीन इत्यादि दूरस्थ देशों से आये हुए 10500 विद्यार्थी यहां अध्ययनरत थे एवं वे सबके सब छात्रावासों में रहते थे। विज्ञान, गणित, चिकित्सा शास्त्र, ज्योतिशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, संगीत, दर्शन इत्यादि 60 विषय यहां पढ़ाये जाते थे। नालन्दा विश्वविद्यालय भी लगभग इसी स्तर का था एवं वहां के पुस्तकालय में 90 लाख पुस्तकें थीं। 11वीं शताब्दी में इसे मुस्लिम आकांताओं द्वारा पूर्णतया जला दिया गया था।

संस्कृत-इस देश के समस्त महान ग्रंथ जैसे वेद-उपनिषद्, रामायण, महाभारत इत्यादि इसी भाषा में लिखे गये हैं। संसार की अनेक भाषाओं का उद्भव संस्कृत से ही हुआ है एवं इसे भाषाओं की जननी भी कहा जा सकता है। महर्षि अरविन्द घोष ने संस्कृत को मानव मस्तिष्क की एक शानदार उपज बतलाया है जो हृदय के सूक्ष्मतम भावों को प्रकट करने में सक्षम है। नासा में कार्यरत प्रसिद्ध सॉफ्टवेयर वैज्ञानिक डॉ. रिग ब्रिग्स ने अपने एक शोधपत्र में लिखा है, “संस्कृत के व्याकरण कर्ताओं ने कम्प्यूटर साइंस की एक महत्वपूर्ण समस्या-प्राकृतिक भाषा को समझना एवं मशीनों द्वारा अनुवाद करना-के हल करने का तरीका निकाल लिया है।” संस्कृत भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी ध्वनि एवं अर्थ में एकरूपता है एवं इन्हें अलग नहीं किया जा सकता।

इस छोटे से लेख में मैं विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों से उदाहरण देकर यह प्रमाणित करना चाहूँगा कि आज से हजारों वर्ष पूर्व भारतीय वैज्ञानिकों ने किस प्रकार की खोजें की थीं एवं उनका चिन्तन केवल दर्शन एवं साहित्य में ही नहीं अपितु अन्य क्षेत्रों में भी कितना आगे बढ़ चुका था।

पृथ्वी की गति-आर्यभट्ट नामक भारतीय गणितज्ञ का जन्म अब से 1500 वर्ष पूर्व हुआ था। अपने ग्रंथ गोलपाद के अध्याय 4 श्लोक 9 में वे लिखते हैं कि जिस प्रकार नाव में बैठा हुआ एक व्यक्ति नदी के किनारे पर स्थित वस्तुओं को पीछे की ओर भागता हुआ देखता है उसी प्रकार विषुवत् रेखा पर एक स्थान पर स्थित नक्षत्र पश्चिम की ओर जाते हुए दिखलाई पड़ते हैं। आर्यभट्ट ने इस एक उदाहरण के द्वारा यह प्रमाणित किया था कि पृथ्वी घूमती है एवं नक्षत्र एक स्थान पर ठहरे हुए तथा स्थिर हैं।

वर्ष 1851 में एक फ्रांसिसी विद्वान लिया फूकाल्ट ने पृथ्वी की इस दुहरी गति को पेरिस में पुनः प्रमाणित किया एवं आज का वैज्ञानिक संसार इस खोज का श्रेय उसे ही देता है। आर्यभट्ट को लगभग भुला दिया गया है।

गणित-गणित में ऐलजबरा, ज्यामिती, टिग्नोमैट्री, अंकगणित इत्यादि सभी कुछ

सम्मिलित है। भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, महावीराचार्य इत्यादि अनेक गणितज्ञ आज से हजारों वर्ष पूर्व हो चुके हैं जिन्होंने गणित में अनेक नई खोजें कीं, नवीन सूत्रों का आविष्कार किया एवं गणित की कठिन समस्याओं को हल किया। प्रसिद्ध प्राच्यविद एवं लेखक ए.ए.ल. बाशम, जो कि मूल रूप से आस्ट्रेलिया के रहने वाले थे किन्तु जिन्होंने अपना लगभग समस्त जीवन भारतवर्ष में रहकर यहाँ के प्राचीन ग्रंथों पर शोध करने में व्यतीत किया, ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'द वंडर दैड वाज़ इण्डिया' में लिखा है। अब मैं हिन्दुओं के ज्ञान के विषय में बात करूँगा। उन्होंने ज्योतिष विज्ञान के क्षेत्र में अत्यंत सूक्ष्म खोजें कीं जो कि यूनानियों एवं बेबीलोन के निवासियों से भी अधिक मौलिक थीं। उन्होंने गणित एवं गणना के क्षेत्र में नवीन पद्धतियां खोज निकाली जिनसे मेरा तात्पर्य नौ प्रकार के चिन्हों से है एवं जिनकी प्रशंसा करने के लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं। यदि यूनानी भाषा भाषी यह समझते हों कि केवल वे ही विज्ञान के क्षेत्र में शोध कर सकते हैं तो उन्हें जान लेना चाहिये कि एक अन्य भाषा बोलने वाले भी इन विषयों में उनसे कम पारंगत नहीं थे।''

यहां पर केवल एक ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा। पाइथागोरस की थ्योरम विश्व में प्रसिद्ध है जिसके अनुसार एक चतुर्भुज के लम्बाई तथा चौड़ाई के वर्गों का क्षेत्रफल का योग उसके डायगोनल के ऊपर बने क्षेत्रफल के बराबर होता है। पायथागोरस का जन्म 19वीं शताब्दी में हुआ था। किन्तु भारतवर्ष में 2800 वर्ष पूर्व जन्मे गणितज्ञ बोधायन ने अपने द्वारा रचित सुलभसूत्र के अध्याय एक, श्लोक 12 में इसी थ्योरम का उल्लेख करते हुए इसे प्रमाणित किया है।

इसी प्रकार भौतिक शास्त्र, रसायन, शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र इत्यादि में भी विस्मयकारी खोजों के उदाहरण उन प्राचीन ग्रंथों में मिलते हैं। प्रकाश की गति के विषय में ऋग वेद संहिता, मंडल 1, सूक्तं 50 ए मंत्र 4 में कहा गया है कि सूर्य देव आपको नमस्कार है, 2202 योजन की यात्रा आधे निमिष में पूर्ण करते हैं। एक योजन 9 मील 110 गज का होता है एवं इस प्रकार 2202 योजन 21144.705 मील के बराबर होता है। आधा निमिष 0.114286 सेकंड के बराबर होता है। अतः ऋग वेद के अनुसार प्रकाश की गति 185016.169 मील प्रति सेकंड होती है।

वर्तमान युग में प्रकाश की गति के निर्धारण का श्रेय माइकेलसन एवं मार्ले नाम के दो वैज्ञानिकों को जाता है जिन्होंने वर्ष 1887 में प्रकाश की गति 186300 मील प्रति सेकंड निर्धारित की थी। यह स्पष्ट है कि 6000 वर्ष पूर्व कन्व ऋषि के पुत्र ने प्रकाश की गति का लगभग ठीक पता लगा लिया था। इसी प्रकार चंद्र तथा सूर्य ग्रहण, नक्षत्रों की गति एवं उनके मार्ग इत्यादि का सटीक उल्लेख भारत के प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध है। आवश्यकता है केवल इस विषय में गहन शोध करने की।

काय चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, औषधि शास्त्र-चारों वेदों में अथर्व वेद सबसे बाद में लगभग 5000 वर्ष ईसा पूर्व लिखा गया था। इसकी अनेक ऋचाओं में

चिकित्सा संबंधी उल्लेख मिलते हैं। मूल रूप से चिकित्सा शास्त्र में तीन बड़े विद्वान आत्रेय, धन्वंतरी एवं कश्यप हुए हैं जो क्रमशः औषधि विज्ञान शल्य शास्त्र एवं प्रसूति विज्ञान के महान् ज्ञाता थे। भारत की प्राचीन परम्परा के अनुसार गुरु मौखिक रूप से अपना ज्ञान शिष्यों को दिया करते थे। किन्तु चरक, सुश्रुत एवं वागभट्ट ने इस परम्परा को तोड़ा एवं चरक संहिता, सुश्रुत संहिता तथा अष्टांग हृदय की रचना की जो आज भी वृहत त्रयी के नाम से विख्यात हैं। तीन अन्य ग्रंथ शारंग धर संहिता, माधव निदान एवं भाव प्रकाश लघु त्रयी कहलाते हैं।

सुश्रुत संहिता, सूत्र स्थान के अध्याय 7 पैराग्राफ 10 में 21 प्रकार के शल्य यंत्रों का वर्णन मिलता है जिनमें से कुछ यंत्र आजकल प्रयोग किये जाने वाले यंत्रों से काफी मिलते जुलते हैं। इसी प्रकार अनेक प्रकार की शल्य चिकित्साओं में प्रयोग किये जाने वाली सूइयों, धागों, चाकुओं इत्यादि का वर्णन भी इन ग्रंथों में मिलता है। ये प्राचीन ग्रंथ औषधि विज्ञान के भंडार हैं तथा देशी औषधियां अनेक रोगों में एलोपैथिक औषधियों से अधिक प्रभावकारी प्रमाणित हो चुकी हैं।

संस्कार-संस्कृति एवं हमारी विरासत-संस्कार शब्द का पर्यायवाची शब्द किसी अन्य भाषा में नहीं पाया जाता। यह संस्कृत भाषा का अनूठा शब्द है। वैसे तो हमारे शास्त्रों में सोलह संस्कारों का जिक्र आता है एवं हमारा संपूर्ण जीवन इन संस्कारों से आबद्ध है किन्तु संस्कार शब्द का वास्तविक अर्थ अवगुणों का परिमार्जन करके उनके स्थान पर अच्छे गुणों की स्थापना करना है। संस्कार का संस्कृति से घनिष्ठ संबंध है। संस्कृति शब्द की अनेक परिभाषाएं की गई हैं एवं कुछ विद्वानों ने लगभग सवा सौ परिभाषाओं का जिक्र किया है। किन्तु प्रख्यात कवि मैथु अर्नल्ड की व्याख्या भारतीय संस्कृति के करीब लगती है। मैथु के अनुसार जीवन में प्रकाश एवं कोमलता की लब्धि ही संस्कृति है।

भारत का संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा से आया है एवं इसका अर्थ परिष्कृत/परिमार्जन/शुद्धि आदि से लगाया जाता है। यहीं पर आकर संस्कार एवं संस्कृति एक हो जाते हैं। उच्च संस्कृति वाले समाज में ही संस्कारित व्यक्तियों का जन्म होता है एवं संस्कार पूर्ण समाज ही उच्च संस्कृति का जनक है। भारतीय संस्कृति की अनेक विशेषताएं हैं जिनमें से प्राचीनता एवं निरंतरता प्रमुख स्थान रखती हैं। किन्तु जो समाज अपने प्राचीन इतिहास, परंपराओं, पूर्वजों एवं उनकी उपलब्धियों को विस्मृत कर देता है वह अपनी जड़ों से कट जाता है एवं विनाश को प्राप्त होता है। भविष्य की उन्नति का आधार भी ये प्राचीन उपलब्धियाँ ही हैं।

अतः उच्च संस्कारवान समाज एवं उत्कृष्ट संस्कृति के निर्माण हेतु हमें अपने पूर्वजों की उपलब्धियों को याद रखना होगा एवं उसी नींव पर एक उज्ज्वल भविष्य का निर्माण हो सकेगा।

५

यज्ञ का पर्यावरण पर प्रभाव

५ डॉ. सुरेन्द्र नाथ सेमल्टी

एक ओर जहां मनुष्य ने अनेक भौतिक साधनों का उपयोग कर अपना जीवन अत्यधिक सुखमय बनाने में सफलता प्राप्त की है, वहीं दूसरी ओर आए दिन वह पर्यावरण प्रदूषण के कारण अपने को असुरक्षित बनाता जा रहा है, जो आने वाले समय में और भी भयावह रूप धारण कर प्राणिमात्र ही नहीं अपितु हर एक पदार्थ के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता है। पर्यावरण का प्रदूषित करने में जहां कुछ कारण प्राकृतिक हैं, वहीं अधिकांश कारण मानवाकृत भी हैं, जो अधिक हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं। वन सम्पदा का बेरहमी से दोहन, कल-कारखानों एवं वाहनों से निकलने वाला धुंआ, गैस रिसाव, कुत्सित विचार एवं भावनाएं जैसे अनेक कारण पर्यावरण को प्रतिकूल बना रहे हैं। ऐसे परिवेश के फलस्वरूप अनेक प्रकार की बीमारियों का होना, अन्न उत्पादन में ह्रास, वर्षा का अभाव, बदलती हुई विषम भौगोलिक परिस्थिति तथा विक्षिप्त मानसिक स्थिति जैसी अनेक समस्याएं पैदा हो रही हैं।

अब प्रश्न इस बात का है कि इन समस्याओं से कैसे बचा जाए? इस क्षेत्र में अनेक आविष्कार किए जा चुके हैं तथा नये-नये शोध किये जा रहे हैं। यदि यों कहा जाय कि यज्ञ पर्यावरण को अनुकूल बनाने का सबसे प्राचीन आविष्कार है तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। यद्यपि अधिकांश लोग अभी तक भी इस क्रिया को मात्र धार्मिक मानकर चलते हैं, लेकिन जान पड़ता है कि हमारे वे ऋषि-मुनि जिन्होंने अपने जीवन काल में दैनिक क्रिया से लेकर बड़े-बड़े उद्देश्यों की पूर्ति हेतु यज्ञ का विधान अनिवार्य माना है, संभवतः उन्हें पर्यावरण पर इसके अनुकूल प्रभाव की भी जानकारी रही होगी। यज्ञ में अग्नि तत्व की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके उपयोग से मनुष्य अभीष्ट फल को प्राप्त करता है एवं इसी कारण वेदों में उसकी स्तुति की गयी है-गर्भो अस्योषधीनां, गर्भो वनस्पतिम्। गर्भो विश्वस्य भूतस्य-अग्ने गर्भो अपामसि।। संसार की समस्त औषधियों, वनस्पतियों एवं प्राणियों के गर्भ में निवास करने वाली जो अग्नि है, पदार्थों से पृथक् रहकर भी अपना विशेष प्रभाव दिखाती है और जब स्थूल से सूक्ष्म बनकर उसके गुणों में से कई गुना वृद्धि हो जाती है, जिससे अनेक रोगों के कीटाणु तो नष्ट होते ही हैं। साथ ही आकाशीय वातावरण पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है। एक भाग से आकाश, वायु, पृथ्वी एवं जल शुद्ध होता है तथा दूसरा भाग मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर उसे प्रभावित करता है।

यज्ञ के अनेक प्रभाव होते हैं। यज्ञ के भेदों में एक भेद अग्निहोत्र होता है, उस के करने से मनुष्यों एवं पशुओं के रोगों का नाश, वृष्टि करने में सहायता, वायुमण्डल में फैले हुए दुर्विचार निष्क्रिय होते ही हैं। साथ ही वनस्पतियों की विकृत प्रजातियों का संशोधन, फसल की पैदावार में वृद्धि, वृक्षों के बढ़ने में सहायता तथा फल-फूलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीटाणुओं का भी नाश होता है, जैसा कि वेदों में भी कहा गया है—गर्भो यो अपां, गर्भो वनानां गर्भश्च, स्थातां गर्भश्च स्थाम्। अद्रौ चिदस्मा अंतर्दुराणे, विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः।। अर्थात् है अग्नि जहां एक ओर सभी तत्वों के गर्भ में निहित होने के कारण तुम्हारा व्यापक फैलाव है, वहीं दूसरी ओर वृक्षों और लताओं का बढ़ना, फैलना तुम्हारे ही कारण होता है। जहां एक ओर हमारे प्राचीन ग्रन्थों एवं क्रियाओं में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से यज्ञ का पर्यावरण पर प्रभाव के संकेत मिलते हैं, वहीं दूसरी ओर विश्व में अनेक व्यक्ति एवं संस्थाएं इस ओर शोध कर नई-नई जानकारीयां दे रहे हैं। मात्र अग्निहोत्र यज्ञ पर ही अनेक अन्वेषण किये जा रहे हैं, जिसके परिणाम अत्यधिक चौंकाने वाले हैं। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि पृथ्वी पर जो जीवनदायिनी, वायुमण्डल की पतली परत है, वह अनेक प्रकार के प्रदूषणों एवं प्राकृतिक साधनों के अंधाधुंध उपयोग करने से कमजोर और प्रदूषित होती जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप मन तनावग्रस्त और शरीर अनेक प्रकार के रोगों से ग्रसित होने लगता है। यदि अग्निहोत्र यज्ञ किया जाये तो मनुष्य इन संकटों से छुटकारा प्राप्त कर सकता है।

फ्रांस के रासायनिक विशेषज्ञ डॉ. त्रिले ने अपने अनुसंधान द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि अग्नि में जब काष्ठ जलाया जाता है, तब उससे फार्मिक आल्डीसाइड नाम की एक गैस उत्पन्न होती है, जिसके प्रभाव से सभी प्रकार के हानिकारक कीटाणु नष्ट होकर पर्यावरण शुद्ध होता है। साथ ही डॉ. त्रिले ने यह भी खोज की है कि हवन में घी, दूध, शक्कर, किसमिस, मुनक्का, छुहारा आदि पदार्थों की आहुतियां देने से भी अनेक रोगों से बचा जा सकता है। जहां एक ओर यज्ञ के धुएं के प्रभाव से टाइफाइड, मलेरिया, बवासीर, क्षयरोग, चर्मरोग, दांत-आंखों के रोग जैसी अनेक व्याधियों की प्राकृतिक चिकित्सा होती है, वहीं दूसरी ओर भौगोलिक परिस्थितियों को भी यज्ञ द्वारा बहुत कुछ अपने अनुकूल बनाया जा सकता है। इसी कारण अमेरिका में अग्निहोत्र विवि की स्थापना की गयी है जहां अनेक परीक्षण किए जा रहे हैं। इस विवि के एक शोध द्वारा सिद्ध किया गया है कि यज्ञ का धुआं आठ किमी तक अपना प्रभाव दिखाता है, जिससे कीटनाशक दवाइयों के छिड़काव के समान फसलों पर लगने वाली बीमारियां नष्ट होती हैं तथा वायु प्रदूषण समाप्त होकर पैदावार के लिए उचित वातावरण तैयार होता है।

अन्वेषण से यह भी सिद्ध हो चुका है कि यज्ञ के द्वारा वायुमण्डल में पौष्टिक तत्वों की वृद्धि होती है और जो जहरीली गैसों होती हैं, उनका दुष्प्रभाव समाप्त हो जाता है। आकाश में वर्षा करने वाले बादल उमड़ पड़ते हैं, जो पर्याप्त वर्षा पर धरती में हरियाली

बिखेर देते हैं। वैज्ञानिकों ने शोध कर सिद्ध किया है कि यज्ञ के द्वारा उत्पन्न ऊर्ध्व गति वाली वायु वर्षा करने में सक्षम होती है। जब यज्ञ में घी की आहुतियां दी जाती है तो घी के कण सूक्ष्म होकर वायु के माध्यम से बादलों के सम्पर्क में जाकर स्वयं तो जमते ही हैं साथ ही बादलों को भी जमाकर वर्षा करने योग्य बना देते हैं। उपरोक्त अन्वेषणों की पुष्टि जर्मनी की एक प्रयोगशाला में वैज्ञानिकों द्वारा किए गए प्रयोगों से भी होती है, जिसमें उन्होंने सिद्ध किया है कि मनुष्य के शरीर को स्वस्थ रखने, वायुमण्डल को प्रदूषण रहित रखने तथा उर्वरकता की दृष्टि से यज्ञ का धुआं और राख अत्यधिक उपयोगी होती हैं। यदि यों कहा जाये कि यज्ञ से हर प्रकार का पर्यावरणीय स्वास्थ्य बढ़ता है तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। शोधों के आधार पर यह बात स्पष्ट हो गई है कि यज्ञों का अनुष्ठान करना मात्र धार्मिक परिवेश तक ही सीमित नहीं रह गया है, बल्कि मनुष्य, पशु और वनस्पतियों के सही विकास एवं पर्यावरण प्रदूषण को नष्ट करने के उद्देश्य से भी इसकी बड़ी उपयोगिता है। अतः हम सबका यह पुनीत दायित्व हो जाता है कि इस क्रिया का विधि-विधान के साथ अधिक से अधिक प्रयोग किया जाये, ताकि हर प्रकार का पर्यावरण हमारे अनुकूल बन सके।

५

शब्द की ताकत

अमेरिकी लेखक इरविन शिफ़ को अदालत ने 13 साल की कैद की अनोखी सज़ा सुनायी है। उससे न तो कोई चोरी की है, न कोई डाका ही डाला और न कोई अन्य अपराध किया है। इस लेखक ने बस एक पुस्तक लिखी है। इरविन शिफ़ ने अपनी पुस्तक द्वारा अमेरिकी नागरिकों को सलाह दी है कि वे सरकार के प्रति आयकर के भुगतान में देरी या कोताही हो जाने पर बिलकुल न डरें, क्योंकि कोई भी अमेरिकी कानून उन्हें आयकर देने को बाध्य नहीं कर सकता। उसने इतने मज़बूत तर्क दिये हैं कि हज़ारों लोगों ने आयकर देने से इनकार कर दिया।

सिर्फ़ किताब में आयकर न देने के पक्ष में अपने तर्क देने के आधार पर ही इस लेखक पर मुकदमा चलाया गया। जज महोदय ने लेखक को 13 साल की सज़ा सुनाते हुए कहा कि उसकी वजह से लाखों लोगों ने अपना आयकर नहीं चुकाया और इससे सरकार को भारी आर्थिक नुकसान हुआ है। लेखन अगर असामाजिक विचारधारा का प्रचार करना शुरू कर दे तो समाज को कितना नुकसान पहुंचा सकता है। लेकिन सकारात्मक विचारों का प्रचार हो तो ?

आजाद भारत: कैद नदियां

१ राजेन्द्र सिंह

15 अगस्त 1947 को मिली आजादी में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने जिस आजाद भारत की परिकल्पना की थी, उसमें प्रकृति को कैद करने की ख्वाहिश और चित्र शामिल नहीं था। राष्ट्रपिता के सपने में एक ऐसे भारत की परिकल्पना थी, जो भारत की प्रकृति और उस प्रकृति के साथ जीने वाले ग्रामीण समाज को उसका स्वराज और सुराज दोनों दिलायेगा। एक ऐसा भारत.....जहां समाज प्रकृति को अपनी जरूरत की पूर्ति करने वाले उपहार के तौर पर देखेगा, न कि लालच की पूर्ति करने वाले खजाने के तौर पर। लेकिन पिछले 62 वर्ष के आजाद भारत के सफरनामें ऐसा नहीं हुआ।

जिस देश में नदियों को कैद करने के लिए दिन-प्रतिदिन एक नई कोशिश चल रही हो। बिजली, पानी और विकास के नाम पर बंध-तटबंध, मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे और बस्तियां बसाना नदियों को कैद करने का ही काम है। क्या उस देश की आजादी टिकी रह सकती है? नहीं! ऐसे में 15 अगस्त के दिन स्वतंत्रता दिवस मनाना एक रस्म अदायगी से ज्यादा कुछ नहीं है।

यदि भारत की आजादी को टिकाऊ और गौरवशाली बनाकर रखना है, तो हमें अपनी नदियों के प्रवाह को शुद्ध-सदानीरा, नैसर्गिक और आजाद बनाना होगा। नदियों की आजादी का रास्ता नदी तट पर फैली उसकी बाजुओं की हरियाली में छिपा है।

उत्तराखण्ड में भागीरथी पर बांध, दिल्ली में यमुना में खेलगांव-मैट्रो आदि निर्माण, उत्तर प्रदेश में गंगा एक्सप्रेस वे नाम का तटबंध, बिहार और बंगाल में क्रमशः पहले से बंधी कोसी और हुगली.....सब नदियों को कैद करने का ही काम है।

भारत की आजादी, बाघ और जानवरों की आजादी रखने वाले जंगल बचाने और नदियों के आजादी से बहने से हो कायम रहेगी। नदियों के किनारे सघन और स्थानीय जैव विविधता का सम्मान करने वाली हरित पट्टियों के विकास से ही यह संभव है। लेकिन यह तभी हो सकता है जब नदियों की भूमि अतिक्रमण और प्रदूषण से मुक्त हो। नदी भूमि का हस्तान्तरण एवम् रूपान्तरण रूकें।

उत्तराखण्ड में भागीरथी पर बांध, दिल्ली में यमुना में खेलगांव-मैट्रो आदि निर्माण, उत्तर प्रदेश गंगा एक्सप्रेस वे नाम का तटबंध, बिहार और बंगाल में क्रमशः पहले से बंधी कोसी और हुगली.....सब नदियों को कैद करने का ही काम है। नदी भूमि की मुक्ति के लिए हम पिछले सात वर्षों से संघर्ष कर रहे हैं। नदीवासी अलग-अलग तरीके और स्तर पर बार-बार निवेदन कर रहे हैं कि उन्हें एवं उनकी नदियों की आजादी चाहिए। लेकिन क्या कार्यपालिका और क्या न्यायपालिका.....दोनों नदी और प्रकृति के प्रति जैसे संवेदनाशून्य और बहरी हो गई हैं। अब वे न्याय देने के स्थान पर महज एक निर्णय पेश कर रही हैं। ऐसा निर्णय न्यायकारी होगा ही, अब इसका भरोसा उठ गया है। ऐसी परिस्थिति में जरूरी है कि जब सरकार की अदालतों का रास्ता बंद हो जाये, तो हम जनता की अदालत में जायें। अब उम्मीद का यही एक दरवाजा खुला है। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने कहा था-“स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।” गंगा जल बिरादरी ने इस वर्ष स्वतंत्रता दिवस पर इस संकल्प वाक्य के साथ गंगा और दूसरी नदियों की आजादी का उद्घोष किया है कि स्वतंत्रता नदियों का प्रकृतिप्रदत्त अधिकार है। हम इसे हासिल करके रहेंगे।

राष्ट्रीय नदी गंगा के तट पर कोलकाता में प्रथम गंगा आजादी शिविर का आयोजन कर गंगा जल बिरादरी इस महायत्र का शुभारम्भ करेगी। कोलकाता से शुरू होकर हम गंगा और दूसरी नदियों की आजादी के लिए श्रृंखलाबद्ध नदी आजादी शिविरों के जरिए भारत के मानस को एकजुट और संकल्पबद्ध करने का आवाहन करते हैं।

21वीं शताब्दी नदियों की आजादी की सदी बने। नदियों की आजादी से ही मानव आजादी सुरक्षित होगी। हमें सही मायने में आजादी चाहिए, तो हम गंगा की आजादी सुनिश्चित कराने में जुटना ही होगा। आइये! नदियों की आजादी के लिए एकजुट हों.....ताकि भारत की जनता की आजादी और गौरव बच सके।

□

लेखक: जल पुरुष के नाम से प्रसिद्ध हैं एवं
मैंगोससे पुरस्कार से सम्मानित किये जा चुके हैं।

34/36 किरण पथ मानसरोवर

जयपुर-302020

पानी-पानी

५ मधुसूदन आनन्द

भारत के अनेक गांवों और शहरों में पीने के पानी की कमी बढ़ती जा रही है। गर्मियों में हालात बेहद खराब हो जाते हैं। कुछ समय पहले एक अन्तरराष्ट्रीय एजेंसी ने कहा था कि अगर भारत ने साफ पानी की सप्लाई को सुनिश्चित नहीं किया तो 10-12 बरसों में उसकी तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था तो बैठ ही जाएगी, 40 फीसदी आबादी भी साफ़ हो जाएगी। ऐसा ही आकलन चीन के बारे में भी है। भारत की जमीन के नीचे पानी का स्तर गिरता जा रहा है। जो कुएं आज खोदे जाते हैं, वे कल सूख जाते हैं। कहीं-कहीं तो 400-500 मीटर तक खुदाई करने पर पानी मिलता है।

अगर आप बिना पानी के किसी दिन की कल्पना करें तो एक अजीब अहसास से कांप उठेंगे। साफ पानी न हो तो आप क्या पीएंगे? कैसे नहाएंगे और दांत साफ करेंगे? बर्तन धोने, कपड़े धोने और खाना पकाने आदि के लिए रोज पानी चाहिए। पानी नहीं होगा तो आप कैसे जीएंगे? आखिर कितनी देर कोई प्यासा रह सकता है।

पानी पर आपका अधिकार है। वह आपको मिलना ही चाहिए और साफ मिलना चाहिए और जो सरकार या राज्य उसे उपलब्ध नहीं करा सके, उसे एक दिन भी अपनी कुर्सी पर बने रहने का हक नहीं होना चाहिए। पानी पर आपके अधिकार का मतलब है जीवन का अधिकार। अगर पानी आपको नहीं मिल रहा है तो समझिए कि आपसे आपके जीने का अधिकार छीना जा रहा है। किसी भी देश में इस स्थिति को स्वीकार नहीं किया जा सकता और भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में तो बिल्कुल भी नहीं। लेकिन विडंबना यह है कि इस अधिकार को लेकर देश में जो चेतना बननी चाहिए उसके कहीं दर्शन नहीं होते। हमारे देश में पानी के प्राकृतिक स्रोतों की कोई कमी नहीं है। कई वर्षों से मानसून भी अच्छा रहा है। लेकिन पानी की हिफाजत करने और उसे बरतने के मामले में हमारे यहां गहरा आलस्य और अज्ञान है। उद्योगीकरण और शहरीकरण के विस्तार के बावजूद पानी का प्रबंधन आज भी इस तरीके से किया जा सकता है कि वह सबको मिल सके। लेकिन नहीं हो पा रहा है। आप जानते हैं कि इस धरती पर जितना भी पानी जितने रूपों में हैं—पर्वतों पर, ध्रुवों पर, समुद्रों में, नदियों में, झीलों में, नालों में, पेड़-पौधों में और मनुष्य सहित तमाम जीव प्रजातियों में, वह आज भी उतना ही है जितना कि शुरू-शुरू में था। पृथ्वी पानी को देशों और राज्यों में नहीं बांटती। इसे मनुष्य ने बांटा है। आज भारत जिस रूप में

मौजूद है, उसमें कुल प्रयोग में लाने लायक पानी का हिसाब-किताब लगाने के लिए वॉटर बजट का प्रयोग किया जाता है। वॉटर बजट का मतलब है, औसत वार्षिक वर्षा कितनी मिलीमीटर हुई और भारत का कुल भूतल क्षेत्र कितना है। योजना आयोग ने इन दोनों तथ्यों की गणना के आधार पर अपनी एक रिपोर्ट (2007) में माना था कि भारत में वर्षा को जब आंकड़ों में बदलेंगे तो इसका मतलब 4000 क्यूबिक किलोमीटर है। इसमें से 1869 क्यूबिक किलोमीटर देश की नदियों के कुल वार्षिक प्रवाह के रूप में और 432 क्यूबिक किलोमीटर फिर से ग्राउंड वॉटर के रूप में धरती पर जमा हो जाता है। कुल वर्षा का करीब 40 प्रतिशत वाष्प आदि के रूप में उड़ जाता है। इसका मतलब है कि कुल 60 प्रतिशत पानी ही हमारे लिए उपलब्ध होता है। दिक्कत यह है कि कितना पानी उड़ जाता है या रूप बदल लेता है, इसका ठीक-ठीक अनुमान शायद नहीं लग पाता। इसलिए कई विशेषज्ञ मानते हैं कि 40 प्रतिशत का आंकड़ा असल में कहीं ज्यादा होना चाहिए। कुछ ने तो इसे 69.5 प्रतिशत तक माना है। इसका मतलब क्या हुआ? यह कि पानी जितना बताया जा रहा है, उससे भी कम है। आप कहेंगे कि जब पृथ्वी के दो-तिहाई से भी ज्यादा हिस्से पर समुद्रों के रूप में पानी है, तो क्या डर। समस्या यह है कि समुद्री पानी को पीने लायक पानी में बदलना फिलहाल बेहद महंगा काम है। यह विराट काम प्रकृति ही वर्षा के रूप में संपन्न करती है। आप वर्षा की एक-एक बूंद के लिए समुद्र का अभिवादन कीजिए, क्योंकि प्रयोगशाला में यह पानी बनाया नहीं जा सकता। इसीलिए सिर्फ इसके विवेकपूर्ण इस्तेमाल से ही मनुष्यता बच सकती है और कोई उपाय नहीं।

मुझे नहीं मालूम कि भारत में कैसे नदियों, बावड़ियों, जोहड़ों और तालाबों को फिर से पुर्नजीवित किया जाए और कौन इस भगीरथ-कार्य को करेगा। हमारी सरकारें पानी के बारे में उतनी भी सचेत नहीं है। देश की रक्षा के बारे में पानी को लेकर देश में कोई अखिल राष्ट्रीय चेतना तक नहीं है। क्या आपको नहीं लगता कि आज सबसे पहली और जरूरी चीज पानी है, जिस पर गौर करने की, जिसे बचाने की जरूरत है। जब भी आप नल खोलें, कृपया पानी के बारे में सोचें और ईश्वर या प्रकृति को धन्यवाद दें कि पानी आपको मिल रहा है। इस मौके पर प्रख्यात कवि रघुवीर सहाय की यह कविता याद आती है।

पानी-पानी/ बच्चा-बच्चा/ हिन्दुस्तानी/
 माँग रहा है पानी-पानी
 जिसको पानी नहीं मिला है
 वह धरती आजाद नहीं
 उस पर हिन्दुस्तानी बसते हैं
 वह वह आबाद नहीं

(नवभारत टाइम्स से साभार)

५

महिला आरक्षण से ज्यादा जरूरी है ग्रामीण आरक्षण

५ प्रो. ओम प्रकाश सिंह

हिन्दुस्तान की पहचान गांव और किसान से हैं। जनतंत्र में नीति एवं निर्णय बहुमत के आधार पर होते हैं। भारत में बहुमत गांव और गांवों में रहने वाले किसानों का है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार लगभग 72 प्रतिशत आबादी गांवों में निवास करती हैं। ये 72 प्रतिशत गांव सिर्फ गांव ही नहीं नागरिक भारत की भी भूख तथा अन्य आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं।

गांव सिर्फ गेहूँ, चावल ही नहीं गन्ना उत्पादन से चीनी तथा गुड़ आदि की आवश्यकताओं की भी पूर्ति करते हैं। अपनी आवश्यकता की पूर्ति के साथ नगरीय लोगों के लिए भी दूध, घी एवं दही आदि की पूर्ति ग्रामीण लोग करते हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि गांवों के द्वारा ही नगरीय समाज का पोषण होता है। लेकिन इस अन्नदाता गांवों के साथ जनतंत्र में अन्याय हो रहा है। आज इस सब कुछ के बाद भी गांव, ग्रामीण तथा किसान उपेक्षित हैं।

संसद और विधान सभाओं में घटती ग्रामीण आवाज-देश के 72 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों से लगभग 72 प्रतिशत सांसद एवं विधायक निर्वाचित होकर क्रमशः लोकसभा एवं विधान सभाओं में जाने चाहिये किन्तु लोकसभा में ग्रामीणों का प्रतिनिधित्व घट रहा है। गांव और किसान इन सदनों से दूर हो रहे हैं। 2009 में सम्पन्न लोक सभा के चुनाव में 300 करोड़पति लोकसभा में चुने गए। इसी के साथ चार अरबपति भी लोकसभा के सदस्य बने हैं। लोकसभा का आर्थिक प्रतिनिधित्व की दृष्टि से जो ढांचा उभरा है वह ग्रामीण और किसान से बहुत दूर का है। यह निश्चित है कि जिस देश में बड़ी आबादी गरीबी का रेखा के नीचे जीवन बिताती हो तथा जिस देश में किसान आत्महत्या करता हो, उस देश में करोड़ और अरब का स्वामी क्या आम आदमी और गांव तथा किसान की बात कर सकेगा? यह एक प्रश्न है। फिर जिस देश की राजनीति में वंशवाद शीर्ष पर हो, वहां गांव ओर किसान के प्रतिनिधित्व का प्रश्न और भी ज़ायज़ हो जाता है क्योंकि, करोड़ और अरबपतियों के उत्तराधिकारी ही लोकसभा,

विधानसभा में पहुँचेंगे न कि गांव का गरीब किसान। गांव और किसान का प्रतिनिधित्व उच्चशिक्षा एवं लोक सेवाओं में भी कम है। यह चिंता का विषय है।

विश्वविद्यालयों और लोक सेवाओं में घटता प्रतिनिधित्व: कहा जाता है कि देश के विश्वविद्यालयों में भावी भारत तैयार होता है। अर्थात् देश का भावी शिक्षक एवं देश का भावी लोक सेवक अर्थात् आईएएस और पीसीएस जैसी सेवाओं में भी ग्रामीण भारत का प्रतिनिधित्व एक प्रतिशत भी नहीं है क्योंकि नगरों में भी रहने वाले बहुसंख्यकों का रिश्ता गांवों से है एवं इस प्रकार सिर्फ 10 प्रतिशत देश की आबादी पूर्ण नगरीय है।

महिला आरक्षण से ग्रामीण आरक्षण ज्यादा जरूरी-वर्तमान समय में महिला आरक्षण की चर्चा जोरों पर है। वैसे हिन्दुस्थान में परिवार व्यवस्था दुनिया में सबसे भिन्न है। व्यवहार में देखा जाए तो वास्तव में हिन्दुस्थान का स्वरूप परिवार व्यवस्था के कारण ही बचा है। हिन्दुस्थान में परिवार व्यवस्था का ढाँचा बिखर भले ही रहा है लेकिन देश की व्यवस्था बचाने का यह मूल आधार है। संयुक्त परिवार से एकाकी परिवार की ओर देश का परिवर्तन अवश्य हो रहा है फिर भी परिवार किसी न किसी रूप में सामाजिक जीवन का आधार है। परिवार व्यवस्था में पश्चिम की भाँति स्त्री एवं पुरुष की अलग या स्वतंत्र पहचान न होकर एक संयुक्त पहचान है। पश्चिम में परिवार एक अस्थिर या समझौता आधारित व्यवस्था है। एक साथ रहते हुए भी स्त्री-पुरुष की सोच अलग-अलग रहती है। एक साथ रहते हुए भी स्त्री-पुरुष परिवार के रूप में नहीं ढल पाते एवं इसी कारण तलाक़ अपने चरम पर हैं।

स्थानीय निकायों में महिला आरक्षण का परिणाम प्रधान पति या क्षेत्र प्रतिनिधि पति या जिला अध्यक्ष पति के रूपों में आया है। यह पश्चिम की दृष्टि से नकारात्मक भले हो लेकिन हिन्दुस्थान के लिये उचित है, क्योंकि स्त्री की पूरक पहचान है, न कि अलग। इस कारण यदि संसद और विधान सभाओं में महिला प्रतिनिधित्व होता है तो ग्रामीण और किसान परिवारों का भला नहीं होगा। इससे वंशवाद काबिज होगा। अभी राजनेता अपने और अपने पुत्र-पुत्रियों के साथ राजनीति करते हैं। महिला आरक्षण के बाद ये राजनेता, पत्नी, पुत्र-पुत्री सहित पूरे परिवार के साथ विधान सभा में विराजेंगे। इस प्रकार कुछ सौ परिवारों का शासन इस देश में होगा और ग्रामीणजन तथा किसान हाशिए पर होंगे।

महिला भारत में एक स्वतंत्र वर्ग नहीं, जबकि गांव एक स्वतंत्र वर्ग है। क्योंकि भारत वास्तव में गाँवों और नगरों जैसे दो वर्गों में बंटा है। राजनीति, शिक्षा, प्रशासन

आदि में हाशिए पर पहुँचे देश के 72 प्रतिशत गाँवों और ग्रामीणों का उनका हक चाहिए। महिला आबादी यदि 50 प्रतिशत है तो गाँव की आबादी 72 प्रतिशत है। गाँव के आरक्षण में महिलाएँ भी होंगी। वैसे देश में इस समय राष्ट्रपति महिला, लोक सभा अध्यक्ष महिला, पूर्व प्रधानमंत्रियों की सूची में महिला रही हैं। मुख्यमंत्री तथा राज्यपालों के रूप में भी वे रह चुकी हैं। प्रशासनिक क्षेत्र में तथा विश्वविद्यालयों की शिक्षा में महिलाओं की उपस्थिति है। लेकिन गाँवों के बेटों की उपस्थिति विश्वविद्यालयों तथा प्रशासनिक पदों पर नहीं है। इस कारण महिला आरक्षण से अधिक जरूरत ग्रामीण आरक्षण की है।

ग्रामीण आरक्षण का स्वरूप—ग्रामीण आरक्षण का अर्थ सिर्फ गाँव का निवासी होने से नहीं वरन् कुछ और भी शर्तें जरूरी हैं। गाँव से इन्टर तक की शिक्षा ग्रहण की हो। गाँव में परिवार के सदस्य रहते हों। कृषि पर निर्भरता हो या कृषि कार्य करता हो। ग्रामीण क्षेत्र से लड़ने वाले सांसद और विधायक के लिए गाँव में मकान, निवास, शिक्षा के साथ-साथ गाँव की मतदाता सूची में पंजीकृत हो और निर्वाचित होने पर निवास गांव में करे। उसका कार्यालय ग्रामीण क्षेत्र में ही हो। 72 प्रतिशत गाँव के लोगों के लिए प्रत्येक क्षेत्र में 50 प्रतिशत आरक्षण मिले। इस 50 प्रतिशत आरक्षण में अनुसूचित जाति अन्य पिछड़ा वर्ग एवं महिलाओं के लिए स्थान अनुपातिक दृष्टि से अलग किये जा सकते हैं।

ग्रामीण आरक्षण से लाभ—ग्रामीण आरक्षण वास्तव में नगरीय समूह के विरोध में नहीं है। 28 प्रतिशत आबादी के लिए 50 प्रतिशत ग्रामीण आरक्षण से शेष 50 प्रतिशत स्थान शेष ही रहेगा। इतना ही नहीं 28 प्रतिशत नगरीय आबादी में बहुसंख्यक, ग्रामीण ही हैं। ग्रामीण आरक्षण से नगरीय क्षेत्रों की ओर पलायन रूकेगा और नगरों पर दबाव घटने से नगरों का संतुलित विकास होगा और बिजली, पानी और प्रदूषण से भी नगर मुक्त होंगे। भारत खुशहाल तथा विकसित होगा। न तो नक्सलवाद पनपेगा और न ही किसान आत्महत्या करेगा। अब समय है बहुसंख्यक गाँवों और ग्रामीण के साथ न्याय करने का। इस कारण हिन्दुस्थान में जरूरी है महिला नहीं ग्रामीण आरक्षण।

५

चरित्र एक ऐसा हीरा है। जो हर किसी पत्थर को घिस सकता है।

—बर्टल



सफलता एवं समृद्धि से संतुष्टि तक का सफर

□ समीक्षक

भारतीय मूल के एक लेखक रोबिन शर्मा कनाडा में रहते हैं। वे पर्सनलिटी डेवलपमेन्ट के ऐक्सपर्ट के रूप में संसार भर में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने 'हू विल क्राई व्हेन यू डाई', 'डिस्कवर यौर डेस्टिनी', 'सुपर लिविंग' आदि अनेक पुस्तकें लिखी हैं। वे लीडरशिप इन्टरनेशनल नामक फर्म के सी.ई.ओ. हैं एवं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के लीडरशिप गुरु माने जाते हैं।

1997 में उन्होंने एक पुस्तक लिखी 'दि मौन्क हू सोल्ड हिज़ फरारी।' इसका विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ। अब इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है। यह पुस्तक जूलियन मेंटल नामक वकील की कहानी है। उसके पास धन, सम्पत्ति, प्रसिद्धि सहित संसार की समस्त सुख सुविधायें उपलब्ध हैं। वह महल जैसे एक आलीशान बंगले में रहता है। उसके पास अपना निजी जैट वायुवान है एवं दुनिया की सबसे कीमती फरारी कार है। उसकी दिनचर्या, जीवन शैली एवं प्राथमिकताएं धन, शक्ति एवं प्रसिद्धि के चारों ओर घूमती हैं। किन्तु इस समृद्धि एवं प्रसिद्धि को प्राप्त करने की धुन में वह अपना स्वास्थ्य खो बैठता है। उसे हार्ट अटैक होता है एवं वह 53 वर्ष की आयु में 70 वर्ष का दिखने लगता है।

हार्ट अटैक उसकी आँखें खोल देता है एवं वह अपनी फरारी कार सहित सम्पत्ति बेच कर खुद अपनी तलाश में निकल पड़ता है। वह भारत पहुँचता है एवं हिमालय के एक सुरम्य स्थान पर उसकी भेंट साधुओं के प्रमुख योगी रमन से होती है। योगी रमन उसे आध्यात्मिकता के साथ ही जीवन में सफलता पाने, सपनों को पूरा करने एवं आनंदित रहने के गुर सिखाते हैं। योगी रमन जूलियन को बतलाते हैं कि दूसरों की स्वार्थहीन सेवा से जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त होता है। हर दिन को ऐसे जीना चाहिए मानो वह उसके जीवन का अंतिम दिन हो। वे मस्तिष्क में आनन्दपूर्ण विचारों का विकास करें एवं निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ें। तीन वर्ष के पश्चात् जब जूलियन वापस लौटे तो वे बिलकुल बदल चुके थे। वे अपने एक पुराने सहयोगी को वह सब कुछ बतलाते हैं जो उन्होंने हिमालय में रहने वाले योगी से सीखा था।

पुस्तक में कुल ग्यारह अध्याय हैं जो एक दूसरे से जुड़े हुए हैं एवं विचार प्रवाह

कभी नहीं टूटता। उनमें से सात अध्यायों में सात उपदेश दिये गये हैं:

1. अपने मन के स्वामी बनें।
2. अपना लक्ष्य निश्चित करके उसे पाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहें।
3. सत्य आपके हृदय में है। उसे कहीं और तलाश करने की आवश्यकता नहीं है।
4. एक अनुशासित जीवन जीयें।
5. अपने समय का सदुपयोग करें।
6. दूसरों की निस्वार्थ सेवा करें।
7. वर्तमान में जीने की आदत डालें एवं उसे प्रभावशाली बनाएं।

इन सात गुणों से कुछ और गुण भी विकसित हो जाते हैं जिन पर पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। मन में नकारात्मक विचार न आने दें एवं जिन चीजों से डर लगता है उन्हें अवश्य करें। महानता दूसरों से श्रेष्ठ बनने में नहीं है अपितु स्वयं को पहले से बेहतर बनाने में है।

आँखें हमेशा लक्ष्य पर रहनी चाहिए एवं लक्ष्य पाने के लिए स्पष्ट लक्ष्य, डेड लाइन एवं उसका निरंतर पीछा करना आवश्यक है। कुछ पाने की ललक में जीवन के आनन्द को न भूलें एवं हर दिन को पूर्ण ऊर्जा एवं तन्मयता से जियें। आपके जीवन की गुणवत्ता एवं सफलता आपके विचारों पर निर्भर है। आप अपने भाग्य के स्वामी हैं एवं नाकामयाबी को दोस्त बनाएँ।

पुस्तक में लिखी बातें नितान्त रूप से मौलिक नहीं हैं। उन्हें हम पहले भी पढ़ एवं सुन चुके हैं। किन्तु लेखक का अन्दाजे बयां नया है। वह उपदेश देने के स्थान पर एक दिलचस्प कहानी के माध्यम से प्रवाहपूर्ण भाषा में बात कहता है। लेखक Self leadership के अन्तर्गत स्वयं को विकसित करने एवं सफलता पाने के उपाय बतलाता है। सबसे बड़ी बात यह है कि पुस्तक एक ऐसी जीवन पद्धति की ओर इंगित करती है जहाँ समृद्धि एवं सफलता से पूर्ण जीवन में आंतरिक आनन्द भी प्राप्त होता है। कुछ पाने की ललक में जीवन की खुशियों को खो देना सर्वस्व खो देना है।

५

संतुष्टि

1. मन में संतोष होना स्वर्ग की प्राप्ति से भी बढ़कर है। संतोष ही सबसे बड़ा सुख है। संतोष यदि मन में भली-भांति प्रतिष्ठित हो जाए तो उससे बढ़कर संसार में कुछ भी नहीं है।
—वेदव्यास
1. अधिक धन-संपन्न होने पर भी जो असंतुष्ट रहता है, वह निर्धन है। धन से रहित होने पर भी जो संतुष्ट है, वह सदा धनी है।
—अश्वघोष
1. जो अप्राप्त वस्तु के लिए चिंता नहीं करता और प्राप्त वस्तु के लिए सम रहता है, वह संतुष्ट कहा जा सकता है।
—महोपनिषद्
1. संतुष्ट मन वाले के लिए सदा सभी दिशाएं सुखमयी हैं।
—भागवत

I Believe

Dr. Karan Singh

As I travel around the world I am often asked, usually by younger people, a simple but formidable question: "What is your philosophy?" While I speak extensively on the philosophy of Vedanta, of the Upanishads, of Sri Aurobindo and so on, that does not answer the question. As I turn seventy-five, I thought this would be a good occasion to try and spell out what precisely I believe.

Our beliefs flow from the totality of experience to which we have been exposed. I have been fortunate that my exposure has, in many ways, been more varied and intense than falls to the lot of most people. There are four main sets of factors that have moulded my thinking—books, music, travel, and people. In all four I have had the good fortune of an extremely wide and stimulating contact, and if I have not imbibed more from them, the fault is entirely my own. In any case, I shall try briefly to identify the major beliefs I have. I am acutely aware of the difficulty in expressing complex ideas in simple words:

1. I believe that man, still in an intermediate stage between the animal and the divine, can raise himself to a higher plane of being, if he makes a conscious and dedicated effort to do so; and there can be no nobler endeavour than this aspiration towards divinity. I believe that each human being born on this planet, or for that matter anywhere else in the limitless cosmos, carries within himself an unquenchable spark of divinity. Our true destiny as human beings revolves around fanning of this spark into the smokeless flame of spiritual realisation.

2. I believe that all political, economic, and social activity should have as its ultimate goal the fostering of this divinity within each individual. **Scientific and technological developments are ultimately counter-productive if they do not lead us towards this end.**

3. I believe that at their highest, all religions are so many different paths leading to the same goal, the ineffable and indescribable union between the human and the divine; that mystics of all religious persuasions have realized and preached essentially the same doctrine of human love and divine communion; and that strife and hatred in the

name of religion is the very antithesis of spirituality and a gross slur on the name of humanity.

4. I believe that India with its unique heritage stretching back to the very dawn of civilisation, has a special role to play in fostering a society which would support this process of evolution. In a world torn by violence and hatred **I believe that India can play a crucial role in leading humanity towards a new equilibrium between wealth and wisdom, having and being.** I believe that we must work for political integration, economic growth, social transformation, and secular democracy not merely as ends in themselves but because this combination can best provide the framework within which the people of our ancient land can fulfill their destiny.

5. I believe that as long as millions go without the basic necessities of civilised existence it is utterly unreal to talk to them about things of the spirit, and that the basic material needs of man must be satisfied as a foundation for further spiritual growth. I believe that this can be achieved only when we succeed in motivating the people of India to put in several decades of hard, disciplined effort for the production of wealth and simultaneously adopt policies to ensure that the wealth so produced is distributed fairly to all sections of society. I believe that this can be achieved not by propagating the bitter doctrine of implacable class warfare but, rather, by trying to involve the nation as a whole in the mighty effort required to break the poverty barrier that still persists around us.

6. I believe that politics will always be turbulent because that is the nature of politics, as it is the nature of the sun to be hot and water to be wet, and that it is futile to lament over the state of politics. We must face boldly the battle of life into which we find ourselves precipitated. **I believe that, approached in the right spirit, political activity can be a powerful instrument for human transformation and can thus contribute goals that lie before the human race.**

7. I believe that our generation holds the present in trust for posterity, and that we have to fulfill this responsibility so that we can repay the debt we ourselves owe to the past. I believe that we must, therefore, protect this planet from wanton despoliation and blatant exploitation in the name of progress, that we must conserve its atmosphere and water, its forests and wild life, from the destruction they are facing as the result of increasing urbanisation and industrialisation.

8. I believe that life is necessarily a mosaic of joy and sorrow, of pleasure and pain, of failure and success, of shadow and sunlight; that we must accept these dualities as a necessary stage in our spiritual progress until we are able to transcend them; and that each experience

can be a valuable means for inner growth, unpleasant situations often affording greater opportunities for development than superficially pleasant ones.

9. I believe that love and friendship constitute the surest bonds in a world where everything is constantly changing, and that these should be cherished whenever and wherever they are found. I believe that the creation of beauty through music and poetry, the fine arts and architecture, is a central function of civilisation and must be encouraged so that increasingly large sections of society can derive the immaterial but extremely valuable benefits that flow therefrom, so that man can be led from the outer beauty of form to the inner beauty of spirit.

10. I believe that while each one of us owes a deep debt to the country of our origin, as members of the human race we also owe a wider loyalty to the planet that has nurtured our kind for millions of years.

11. I believe that death is a natural and necessary corollary to life, and must be accepted in a positive manner rather than with fear and dread. I believe that the death of the body merely marks another step in the long journey of the pilgrim soul towards its final destination, and that man must shake off the superstitious dread that he has with regard to this essential and inescapable phenomenon.

12. I believe, finally, that a divine destiny pervades the cosmos, a destiny not distant and remote but one in which in some mysterious way, each one of us is actively involved. **I believe that the most effective means of fulfilling that destiny is a combination of active outer involvement in furthering human welfare and intense inner striving to reach the goal of spiritual realisation.** I believe, thus, that the most eloquent prayer that has ever been evolved is one that has resounded in India down through the corridors of time since the very dawn of our civilizations:

From the unreal lead me to the real;
From darkness lead me to the light;
From death lead me to immortality.

ॐ

Dr. karan Singh is a former governor of J&K, a former central Govt. minister, a great scholar, writer and thinkers.

DOCTOR'S AERROGANCE

LACK OF COMMUNICATION WITH THE PATIENT AND RUDENESS

q Indra Chandra

Last year I was admitted in a hospital for a major operation. My son, who is also a doctor, was with me. Before taking me to the operation theatre, a surgeon from the team of the doctors, who were to perform the operation, said that a test will be done on me and a large quantity of fluid would be injected into the body. My son asked the doctor whether the test was necessary and will it do any good to the patient as it seemed to be a quite painful procedure. The surgeon was very much annoyed on this inquiry and said, "Should I take instructions from my patients and tell them every thing." My doctor son said, yes, it is the right of the patient to know about the treatment given to them and the results expected."

It all ended happily, the test was successful and no necessity was felt to perform the operation.

But it brings me to the topic of certain flaws in the doctor's behavior, especially rudeness and lack of communication with the patient. It is a paradox that in the time of "global communication" and the internet generation" we are faced with a break down in communication between patients and doctors, increasing patient dissatisfaction and rising number of complaints. A common complaint of the patients is that doctors do not listen to them. Patients want more and better information about their problems and the outcome, more openness about the side effects of treatment, relief of pain and emotional stress.

Why should the doctors change the way they communicate? Very often there are reports that the family members of the patients picked up quarrel with the doctors and assaulted them. In most of such cases the doctor is not careless or negligent. The fault lies in his lack of communication skill and rude behavior. In the past decade the image of a doctor and hospital has changed. Patients today are health consumers and want to be active participants in medical decision making. The doctors who are more skilful and intelligent attract more patients, their volume of practice is more and consequently there is decrease in time per patient. In government hospitals there is a huge

rush of patients and the doctors are in a haste to dispose off as many patients as possible in the fixed hours of their duty.

Good doctor patient communication offers many benefits. It gives the patient not only a psychological satisfaction but improves his physical health too. Several studies has found that a good communication between the doctor and the patient results in improvement in emotional health, pain control, lowering of blood pressure, and blood sugar concentration and lessening in disease symptoms.

It the doctor does not describe the dose and frequency of medication the patient may have a completely different understanding of the same. This misunderstanding is more frequent among patients with limited literary skills or with memory problems. Moreover the modern doctors donot want to talk to their patients about dietary restrictions. Patients who misunderstand their prescriptions or eat things which are harmful and aggravate the illness are at great risk.

Rude behavior by high power doctors not only with patients and their attendants but with the hospital staff as well is also a problem. It results in paramedical staff dissatisfaction, quarrels, strikes and even assaults by the patient's relatives on doctors and hospital staff. Rude language and hostile behavior in health care settings poses a threat to patient's safety.

But how to bring a change in doctor's behavior and improve their communication skills? it has been found that this can be achieved with proper teaching. Moreover the doctors must realise that medical practice is more that just a job. They have a moral and social responsibility as well as a medical one. They must preserve their patients' trust. Also communication is an interactive process. Patients also need skills and support to take part in decision making and raise questions about quality. The doctors must try to understand the paitents' perspective while improving the medical service quality and explain their difficulties to them, so that their expectations become more realistic.

The doctors should be more careful when treating a female patient, an illiterate one or a person speaking some language other than the doctor's. There may be some misunderstanding about the physical examination of a female patient in eastern countries. There is a list of essential tasks-called kalamazoo consensus statements. These include:-

Contd. on Page 77

Social Responsibility of the Super-Rich

□ Dr. A. Jagan Mohan Reddy

"No one can do anything. But everyone can do something"

-Anonymous

The opening up of the economy over the last decade and a half has helped India to make a modest impact on its war on poverty and destitution. Though, there have been spectacular successes in wealth creation among entrepreneurs and investors, it is also a fact that inequalities have widened over the last decade.

For instance, the personal fortunes of (see the table) of the top ten business magnates of India in 2005 rose over their record in 2004 by margins far bigger than the eight per cent annual growth of the Indian economy as a whole, thus implying that what could have gone to the poorer sections of the society (to reduce economic inequalities) actually went to make the rich richer.

Name	2004 Rs. in Crores	2005	Growth (%)
Mukesh Ambani	42,700	60,800	42.4
Azim Premji	43,650	53,800	60.8
Sunil Mittal	18,600	29,900	60.8
Tulsi Kanti & family	NA	18,000	NA
Shiv Nadar	9,800	15,400	57.1
K M Birla	9,500	12,500	31.6
Anil Ambani	NA	11,800	NA
Dilip Sanghvi	7,400	9,000	21.6
Naresh Goyal	NA	7,900	NA
Rahul Bajaj	4,100	7,500	82.9

The amounts shown against Mukesh Ambani were the combined wealth of Mukesh and Anil Ambani. In 2005 this combined wealth was Rs. 72,600 crore i.e. up by 70 per cent. (Source: *The economic Times (New Delhi)* January 26, 2006.) There is nothing wrong in sporting extensive brands and running a million dollar company. But it depends on how many avenues one opens up for the needy or how many jobs one creates by providing livelihood to others.

"We make a living by what we get

But we make a life by what we give"- *J Herbert*

Notwithstanding the outstanding contribution of a few corporate houses like Tata's, etc, civil society cannot wash its hands off by simply paying the requisite taxes but has to actively participate in the process of supplementing governmental initiatives to end poverty and destitution-be it in delivering better health and education services or in creating a better living environment. Let's understand the relevance and need for individual social responsibility.

Early last year, an organisation for the disabled in Hyderabad appealed for some urgent monetary help since the regular corporate donors preferred to give their yearly aid to tsunami-related charities. Then it became the social responsibility of the good Samaritan who ran the organisation to stay afloat. *It is this individual social responsibility that corporates and others should bear.*

Every society has to find a way of reigning in great fortunes for the benefit of the society at large, while ensuring that the motivation for wealth creation is not diluted in any way. **As a mark of thanking our good fortune, one should give back. The noblest way to do this would be to become a grassroot social worker or to finance people who do such work.** There are people, while not heading governments or business empires, have proved that where there is a will there is a way and showed by their actions that, "*Manava Seva, Madhava Seva.*"

There are many noble souls who have contributed for social causes. For instance, Dr. Marc Stollreiter, a German psychologist and Birgit Lenger, an Austrian social and cultural interpolator, led around 150 volunteers in a daylong campaign to clean Srinagar's main tourist attraction, Dal Lake. Dr. Marc was motivated by his friend who on a visit to enjoy the idyllic stillness of its waters was shocked to see heaps of garbage in the lake during a *shikara ride*.

Similarly, a group of 12 students from the prestigious Massachusetts Institute of Technology (MIT) led by their Professor Balakrishnan Rajagopal visited a village in Gujarat to assess the viability of setting up an ecosan toilet to solve the problem of manual scavenging. Ecosan, a widely available technology, separates urine from faeces and later they, were dehydrated and turned into compost. This model

not only makes it safe to handle waste but will also gradually rule out the need for scavengers. A basic ecosan unit would cost about Rs. 2-3000 while a pucca one between Rs. 10-12000.

A group of students in Mumbai pooled up their pocket money to install state-of-the-art equipment at Sion Hospital in Mumbai on learning about the deplorable conditions there.

It is heartening to note that at the annual meeting of the Confederation of Indian Industry prime minister Manmohan Singh had eloquently argued the case for corporations to go beyond their narrow financial interests and embrace Corporate Social Responsibility. Let's also hope that the Prime Minister extends the same principle to the political sectors by initiating steps to reduce hardships to people such as not travelling in cavalcade of half a dozen vehicles. thereby putting commuters to undue hardship, etc.

It is the moral as well as the civic duty of everyone in society-politicians, industrialists, businessman, judges or other citizens to accept their social responsibility in improving the lot of the humanity.

*The writer is the Associate Professor
H.R. Osmania University Hyderabad*

ॐ

From Page 74

- 1 Building a Relationship
- 1 Opening a discussion
- 1 Gathering information
- 1 Understanding patients perspective
- 1 Sharing information
- 1 Coming to conclusion
- 1 Prescribing the treatment

A doctor's competence includes not only his knowledge of medicines and his skill in surgery but his communication skill with the patient and his behavior as well. In good medical schools it is treated as a separate subject and its importance is no less than that of other subjects. Competency in this field not only cures the patient but gives a mental satisfaction to the doctor which is of no less importance than monetary gain.

ॐ

ANCIENT WISDOM AND MODERN THOUGHT

— Dr. N. C. Ramanujachary

There is an ancient body of wisdom. This deep religion, unfathomed science and compassionate philosophic inquiry into the truth with regards to nature and human existence, has a central place in this ancient wisdom for the reason that 'it is a barometer that not only reacts to changes in the climate of the prevailing thought of an age, but it can also be a thermostat that sets the limits of human thought in any age.

Eastern philosophy upholds other spiritual aspects of nature and human existence. It is introspective, as well as intuitive. It is not concerned with the personal goals and is detached from the results of action.

As is indicated in a Source Book of Indian Philosophy, we lost the spirit of dynamism when the country came under the rule of outsiders. The Muslims and the English assumed control and subjected the realm of thought to a great extent. For a long time, English-educated Indians were unmindful about their own ancient moorings.

The doctrines of the six classical schools of Indian Philosophy received a sort of revival later, and a look into the pre-vedic culture and philosophies became a matter of interest. *Nasadiya sookata* of Rig-Veda, according to Shri Madhusudan Ojha, gave credence to 10 schools of 'Rahasyams' of the pre-vedic period. *They are: Sat-asatvada, Rajovada, Vyomavada, Aparavada, Avaranavada, Ambhovada, Ahoratravada, Amrrta-Mrtyuvada, Daivada and Samsayavada.*

Composers of Vedic-mantras went into all these and made their studies in further development of the thought. Ojha further clarifies that there were six Darsanas, Three of Vedic relevance and three otherwise, Lokayata, Vainasika and Syadvadika (Charvaka, Buddhist and Jain respectively) were the three of the latter group, while Vaisesika, Pradhanika and Sarira (*Vaidika, Sankhya and Vedanta respectively*) belong to the earlier class. Now, we have only six Darsanas under the

style: Nyaya, Vaishesika, Sankhya, Yoga, Mimamsa and Vedanta. This is to show how the thoughts are epitomised and oversimplified to suit the situation.

Old doctrines are swept away to give place for the new. Still ideas do return in a cloak that is suitable to the times. We can safely rely upon the statement too often made that modern ideas are not entirely new but are echoes of the doctrines of the earlier period.

The primary function of philosophy is to open the hearts of men and women of the world to the altruistic service of humanity. While Western philosophy might call it pragmatism, the Bhagavad Gita would prescribe a system that is beneficent for the human to rise above the afflictions.

Wisdom is that which creates, sustains and regenerates the Cosmos. Wisdom is at the root of manifestation. Wisdom prevails and draws to its

We can safely rely upon the statement too often made that modern ideas are not entirely new but are echoes of the doctrines of the earlier period.

current fold the whole scheme of things in the manifested world. The wisdom-tradition has its own ways of continuation. It is the undercurrent of all cultures and civilisations that surfaced on the earth. Current to the time, it springs up and sweeps the environment. It is ever present though humanity is blind to its presence. We wake up to this wisdom on and on. That is the way and history of the world. There are certain situations when we deliberately wake up and try to catch this wisdom.

Scriptural texts of the world nations contain this wisdom. Mechanical repetition and playing upon the mere words make the text appear stale. Wisdom includes in itself an insight that we may call intuitive knowledge. Texts are to be studied and examined with due insight, explored with greater sensitivity. Scriptures contain shallows that a child can wade and depths in which a giant must swim. Teachings of the wisdom are simple and direct. They are also practical that any intelligent person can understand and follow. They are also lofty and profound that the industrious intellects labour to contain them.

Authority of the scriptural texts is something many times not properly understood. The Sanskrit term for this is '*Sastra Pramana*'. meaning that the scripture is the hard-base for further measurement of the statements. Measuring and exploration of newer meanings, applications and utilisations is what is intended and needed.

There is a tendency either to give great prominence to the tradition and values connected with that or to overthrow all that is called old and ancient. Both attitudes are extremes and they

need a sort of moderation. 'To throw away the baby with the bath water.' is a common statement, and we must be cautious with such acts. Statements of wisdom need our careful examination, appropriate understanding and adaptation. They must 'ring true' to us in the first instance.

A reasonable and rational understanding of the ruling guide of wisdom becomes possible when we are open, pure and condiderate. Modern insight includes all this. Studies of psychology, modern sciences such as environment and oceanography have many implications and supplement our understanding of the scriptures, looking afresh and without any weight of bias or prejudice. Added to this a totally non-personla view of things, viewing all in a historical perspective becomes necessary. 'Scientific temperament' is the term being employed in recent times to indicate this, but the term is inadequate. What can perhaps serve the purpose is 'Unitive Perception' which is a holistic consideration.

Wisdom of India (Indosophy) is the quintessence of the time tested learning of the ages. It is the universal ancient wisdom and religion, the source of all branches of knowledge. Ancient India is vast in its space. The ancient writers' wisdom consisted of what we now call *Vedanta, Tattwa, Mansika, Niti, Matadhrma, Manavadharma and Parama Poornatva Sastras.*

What was scattered throughout thousands of volumes embodying the scriptures of the great Asian and early European religions, now attempted in 'gathering the oldest tenets together and make them one harmonious and unbroken whole'. Such an attempt was made by Madame Blavastky in her books, "Isis Unveiled" and "The Secret Doctrine". It must not be forgotten that all this means an advancement of human thought and the sharing of knowledge for the benefit of humanity as a whole. Nothing is the 'exclusive property' of any one person or nation, culture or civilisation. It is 'revealed' to the intelligent minds in a trust that it shall be used for the common benefit.

५

THE INDIA OF MY DREAMS

□ K.R. Ramachandran

I love India as it is. I am not, however, prepared to go as far as Iqbal and claim that it is better than any other place in the world (*sare jehan se achha*); but I am one with him in proclaiming that India is dear unto me (*pyara Hindustan hamara*).

I love India for many reasons. It is the land of my birth, and it is natural for one to love one's country of his birth. Apart from what may be looked upon as narrow loyalty to one's own country, there are other considerations which endear me to India.

I regard the vast stretch of land between the magnificent Himalayas in the north and the warm waters of the Indian Ocean in the south, making the Indian peninsula, as a congenial place for unsophisticated living. Basic bodily needs are easily satisfied here. The country abounds in places of great scenic charms.

The landscape is excellent and some of our beaches are among the best in the world. We have many rivers, each with its own charm. Ganga majestically flowing through the vast plains of upper India, gives me an indescribable thrill, whether I see it in Haridwar or Varanasi or Patna or Allahabad.

I cherish the richness of our flora. Our banyan trees, with tiny seeds like grains of mustard, are among the biggest and oldest trees in the world. There is one particular banyan tree in a small village near Kadiri in Ananthapur District (Andhra Pradesh) which is the most spread out tree in the world, figuring in the Guinness Book of Records. It is unfortunate that the publicity given to this rare tree is very inadequate. While referring to our flora, our mango of the *apus* variety is the king among the fruits of the world.

Apart from having many places of natural charm, we are having many man made places too which are pleasing to behold. As examples I wish to mention the Marina in Chennai, the Marine Drive in Mumbai and the Central Vista in New Delhi where a solemn and touching

"Beating the Retreat." The function is organised by our armed forces on January 26, year after year.

I love India because of its inhabitants of whom I am proud to be one. It gladdens my heart to see many beautifully maintained temples, mosques, churches and other places of worship in all the major towns and cities of India.

The most comforting part of life in India is the freedom extended to all citizens to follow their respective religious faiths without the least hindrance. Off and on, communal conflicts do erupt, much to our pain, anguish and humiliation; but they are quickly brought under control by the law enforcing authorities. The normal state is one of mutual respect, understanding and even reverence for the followers of faiths other than one's own. It is a heart-warming sight to see many non-Christians lighting candles in the Infant Jesus Church in Bangalore, and many non-Muslims making wishes in the Bande Nawaz Darga in Gulbarga.

Alas, my love for India takes a severe jolting when I think of certain harsh realities which besmirch its beauty. One is widespread poverty and illiteracy.

According to the National Sample Survey Organisation, nearly 26 per cent of our population still live below the poverty line. According to the latest census figures available, nearly 35 per cent of our population remain illiterate, even after six decades of political Independence.

In other words, some 250 millions of our population still do not have the wherewithal to satisfy their basic bodily needs, while some 450 millions still remain illiterate.

These unpalatable truths are not acceptable to me. I cannot reconcile myself to such a state of affairs. Due to my sheer inability to remedy the situation, I enter into a dream about an India whose innate beauty remains unsullied by such blemishes.

In the India of my dreams, no one is obliged to go hungry for want of means to buy bread or its equivalent. In a world with abundant production of foodgrains, it is a sin to let anyone starve. The only persons to experience unsatisfied hunger in the India of my dreams are those who voluntarily give up food for temporary periods as a measure of discipline like some Christians during lent; Muslims during the month of Ramzan and the Hindus on *ekadasi* days. **If a large-hearted and wealthy person arranges a poor feeding programme on any special occasion, he will find no takers in the India of my dreams.** If he wishes to share his joy with others, he will have to arrange for a "Get together party", not a poor feeding party. In the India of my dreams, no one remains illiterate. The Constitutional directive to provide free and

compulsory education to all citizens would have been fully and efficiently implemented.

Another dismal feature is the prevalence of the caste system. In no other society in the world, do we find the populace classified under some three thousand castes, with high and low gradations, all based on the accident of birth. Such cleavages are having a crippling effect on the strength of our society. Our Constitution has very wisely prohibited all caste-based discriminations.

I wish to go one step further and state that Constitution should destroy the very castes themselves. Unless this is done, caste feelings, like pathogenic germs, keep on eroding the health of our Nation. In the India of my dreams, therefore, there will be no Iyengars, Naidus, Maduliars, Malas, Madigas, etc., ad nauseum. A common bond of humanism (insaniyat or manaviyata) would knit us all in a vast human brotherhood.

There are quite a few other relatively minor defects which mar the image of India. I shall content myself by referring to only two of them:

(1) I feel unhappy that many of our sisters cover their faces with "burkhas" when they go out. Some have asked me, "In what way are you inconvenienced if some women wear *burkhas*?" I answer: "I feel insulted as a member of a free society. I want the atmosphere in the country to be such as to facilitate the elimination of this anachronistic and primitive practice. In the India of my dreams, all our sisters would have dumped their *burkhas* in the nearest available wells, and would be freely moving about as normal citizens.

(2) I also feel unhappy that when foreign tourists visit places of interest like the Taj Mahal in Agra or the bird sanctuary in Ranganthittu near Mysore, we take from them as admission fee a much higher amount than what is taken from our own nationals. This is no way to treat foreign tourists, who are, in a sense, our honoured guests. The prevailing practice is degrading to me as a self-respecting Indian citizen.

In the India of my dreams, no distinction shall be made between foreign tourists and our own nationals in the matter of admission to certain places of tourist interest.

I want to make it clear that the India of my dreams is not an Utopian state where everything is perfect and all inhabitants feel comfortable in such an exalted state.

As Shakespeare made one of his characters say, **'I believe that the best of men are moulded out of faults and are so much the better for being a little bad!'**

So, in the India of my dreams, I provide for common human frailties within certain limits. There shall be room for all sorts of persons and things. Bullock carts co-exist with Benz cars; but the bullocks yoked to the carts shall be well-fed and sturdy.

As for the inhabitants, extraordinarily intelligent ones coexist with others not so clever. Some are meticulously clean and tidy; others are lazy, sloppy and indolent.

Concluding on a somewhat personal and sentimental note, I noticed some workers, engaged in the construction of a roadside building, cooking steaming food on the trigs on improvised ovens (consisting of three stones), using faggots from nearby trees as fuel.

The question arose in me: "Must I feel happy because the workers are getting sumptuous food, or must I feel miserable because they are forced to use the footpath as their kitchen?"

Even while debating this issue in my mind, I casually asked one of the workders: "For whom are you cooking the food?' He replied: "Why, for ourselves. But we shall happily share it with you if you wish to join us."

I felt stunned by the reply. I mused: these poor and toiling workers, with little or no school education, had not lost their humanism. I inwardly saluted them in warm admiration. In the India of my dreams, none shall be obliged to use a footpath as their kitchen.

But in every human heart, under whatever circumstances, the beautiful flower of humanism will be in full bloom, with unfading fragrance, always showing concern for the welfare of other fellow-citizens.

This, I submit, is realisable in actual life.

I fervently pray that this may happen soon.

ॐ

The only effective way of altering society is the hard and slow one of changing individuals. If we put through patient effort and struggle, we will win power over circumstances and mould them.

-Dr. S. Radhakishan

Somnatha in Legend and HISTORY

□ A. N. Khanna

"It is a Swayambhu Linga of great prowess, as bright as the disc of the Sun, surrounded by a serpent, called the Sarsa Linga and lodged underground"Prabhasa Khana of the Skanda Purana.

Somanath, as a Jyotirlinga, has been given a premier place in our religious literature. From Mahabharata downwards, the Puranic literature has referred to Prabhasa with reverence not shown to any other centre of pilgrimage.

Prabhasa continued to be famous for its sanctity. It was the principal port for commerce with the Middle East. On account of its favourable geographical situation, it rose to prominence, it being an important port of call for ships between Africa and China, possibly the sailors carried the fame of the idol far and wide. In the last quarter of the 15th century A.D. after Begda's destruction. Prabhasa Patan declined as a port and Surat rose as a great entry port.

For a thousand years, Mahmud's destruction of this shrine in A.D. 1026, according to K.M. Munshi, 'has been burnt into the collective subconscious of the race as an unforgettable national disaster.'

B.K. Thapar, an eminent archaeologist who later rose to be Director-General, Archaeological Survey of India, had conducted a short but intensive excavation here, before the old temple was demolished. He brought to light abundant evidence of the material remains of the earlier temples buried below. A few stone slabs with incised letters were also discovered. Red polished ware found in the lower levels of the trenches is dated to the early centuries of the Christian era. Lakulisha, the founder of the Pashupata cult, flourished in the 2nd century A.D. The Miras temple may be taken to pertain to the 1st, 2nd centuries A.D. and in its relics there were the traces of one of the earliest stone temples in India. In all, remains of five successive temples at the same spot were uncovered.

Thapar writes: "The story of Somanatha is known to us in considerable details. It signifies the faith and reverence of the devout Hindu; it symbolises the racial instinct for survival; it amplifies the theory of creation, destruction and reconstruction and above all, it represents the architectural development in Gujrat for over nine hundred years."

Mahmud of Ghazni looted this historic shrine and desecrated it in 1026 A.D. But a large part of his army perished on the way back. After suffering great distress and hardship and after a short halt at Multan where he reached via Mansura in Sindh, he saved his life, but many of his followers of both sexes were captured. He had not returned by the direct route out of fear of the confederate forces of Raja Param Deo, one of the most powerful Rajas of Hindustan.

The Tarikh-i-Sorath states that the Muslim army did not make a stand but fled. It was a rout. Shah Mahmud took to his heels in dismay and gave up his designs on India. The temple was immediately reconstructed by Bhoja and Bhima, the rulers of Malwa and Gujarat. Whenever the Muslims subsequently destroyed the temple, it was soon rebuilt by the Hindus.

According to K.M. Munshi, "From this time, Shiva the Destroyer, was the God of Resistance and in his name millions laid down their lives in defence of their faith and land. In A.D. 1665 and thereafter again in the South under Shivaji and his successors with '*Har Har Mahadev*' on their lips rose in resistance and destroyed the Mughal empire."

In A.D. 1783, Queen Ahalyabai built a new temple nearby.

In A.D. 1842, the British Indian Infantry Regiment when marching from Kandahar to Kabul fought a historic battle at Ghazni and removed the gates of Mahmud's Tomb taking them to be the gates of the Somanatha Temple. M.C. Joshi, Ex-Director-General, Archeological Survey of India, had examined them in Agra Fort but they were gates of Mahmud's tomb having inscription of Mahmud's name and not those of the temple.

M.A. Daky, who excavated here in 1970s, writes: "And we found the answer all right. Not that it was a complete one. Even today it is not. There still are a few exasperating gaps which are beyond our power to fill in; and a couple of blind alleys for which no breakthrough seems in sight."

There was a view that the ruins of the old temples should be maintained. K. M. Munshi was, however, firm in his opinion, that the temple of Somanatha was not just an ancient monument; it lived in the sentiments of the whole nation and its reconstruction was a national pledge. Its preservation was not a mere matter of historical curiosity.

When the Archaeological Survey of India pressed the question, Sardar Vallabhbhai Patel expressed his views as follows: "The Hindu sentiment in regard to this temple is both strong and widespread. In the present conditions, it is unlikely that sentiment will be satisfied by mere restoration of the temple or by prolonging its life. The restoration of the idol would be a point of honour and sentiment with the Hindu

public.'

On Kartik Sudhha I, the New Year Day of Samvat 2004, the Sardar visited Somanatha with Kaka saheb Gadgil. At a huge public meeting held in the dilapidated Ahalya Bai Temple, he announced with sea-water in his hands on November 3, 1947:

'On this auspicious day of the New Year, we have decided that Somanatha should be reconstructed. You, people of Saurashtra, should do your best. This is a holy task in which all should participate.'

A Trust was set up for the purpose and Shri N.P. Chakravarti, Director-General of Archeology, was its Convener. After his retirement in 1950, Shri M.S. Vats succeeded him as the Director-General. Under the Advisory Committee's instructions, Prabhashankar Sompura, with his wide knowledge of the ancient temple architecture building, prepared a plan of the new temple on the style of the old one.

On May 11, 1951 Rashtrapati Dr. Rajendra Prasad installed the Jyotirlinga of Lord Somanath in the new temple constructed on the historic spot at Prabhasa Patan near Veraval (Saurashtra, Gujarat). It was the same spot and over the same Brahmasila were for millennia stood the hoary and sacred Jyotirlinga, and shrine of God Siva, the first among the twelve Jyotirlingas (Divine columns of eight symbolising the all pervading God Siva) in India.

The overall height of the new temple was 155 feet and the foundation had gone upto a depth of 30 feet at places. No temple of this size, architecturally known as Kailas Maha Meru Prasada had been built in the Indian sub-continent in the last 800 years. The stone used from first floor upwards was of the same type as the stone originally used for constructing the previous Somanatha temple. The architecture was also the same.

On May 13, 1965, the booming of 21 guns announced the rising of the flag for Somanatha temple on its *sikhara* to mark the *pratishtha and dhvajadanda* ceremony by His Highness the Jam Saheb of Nawanagar, Chairman of the Somanatha Trust. The funds for reconstruction. Rs. 25 lakh, were donated by the public. As per the advice of Mahatma Gandhi, no funds were taken from the Government.

ॐ

DR. RAJENDRA PRASAD SAID-

"The Somnath Temple signifies that the power of creation is always greater than the power of destruction."

LETTERS TO EDITOR

We, Indians, are becoming modern in every sense except our bad habits. One example is spitting in public places. At home we never spit. But once on the road we are tempted to spit. In buses and trains while travelling we are not bothered if it will fall on someone's body. The only remedy is to make people aware of the bad effects of spitting in public places. Our spit may contain germs which can cause diseases to many. Spitting makes our surroundings dirty. Awareness of people can be made through print and visual media. Government should insist the channels and newspapers to regularly publish such notices. Educational institutions should also create awareness among students because what we learn as a child will remain with us until death. The final remedy is imposing fines. This is being effectively done in many countries.

-Girja, Kochi

Sir, I am an avid reader of your journal. The journal reflects high standards and lofty idealism. It is in tune with the spirit of an organization like Bharat Vikas Parishad which has grown into an institution of national importance sustaining the legacy of Dr. Suraj Parkash Ji.

-Ram Kumar Sharma
Ludhiana

ज्ञान की नयी किरण

“ज्ञान प्रभा” के हर अंक का बेसबी से इंतजार रहता है। विशेषकर इसके सम्पादकीय पृष्ठ का, जिसे पढ़कर मन में आशा और विश्वास की नई किरणें और उम्मीद जगती है। इस के हर अंक की नई-नई सामग्रियां अपने साथ हर बार नयापन लिए आती हैं। वाकई “ज्ञान प्रभा” का साथ पाकर हार्दिक प्रसन्नता होती है।

-शशि मालवीय
प्रयाग



सदस्यता फार्म

GYAN PRABHA
(Quarterly)

ज्ञान
प्रभा
(त्रैमासिक)

मैं ज्ञान प्रभा का ग्राहक बनना चाहता हूँ :

एक वर्ष (000 0000) रु. 100/-
दो वर्ष (000 0000) रु. 200/-
आजीवन सदस्य (0000 000000) रु. 1500/-

स्पष्ट शब्दों में लिखें

नाम.....
(0000)

पता.....
(00000000)

नगर.....पिन कोड राज्य.....
(0000) (000) (00000)

टेलीफोन नं..... मोबाईल.....
(00. 00.) (000.)

तिथि..... हस्ताक्षर.....
(0000) (000000000)

चैक नं./ड्राफ्ट/सं.....दिनांक.....रु.....का संलग्न है
(0000000/0.0.00.) (0000) (000000) (00000000)

(ड्राफ्ट/चैक भारत विकास परिषद् दिल्ली को देय होगा)

(00000000 00 000 00 000000)

(भुगतान के साथ इस कूपन को भी भेजें)

भारत विकास परिषद्

भारत विकास भवन (पावन हाउस के पीछे), पीतमपुरा, दिल्ली-110034

फोन नं. 011-27313051, 27316049

000000 00000 00000000 (000000 00000 000000) 0000000000, 0000000034